श्री अरविन्द और भारत

मीरा श्रीवास्तव

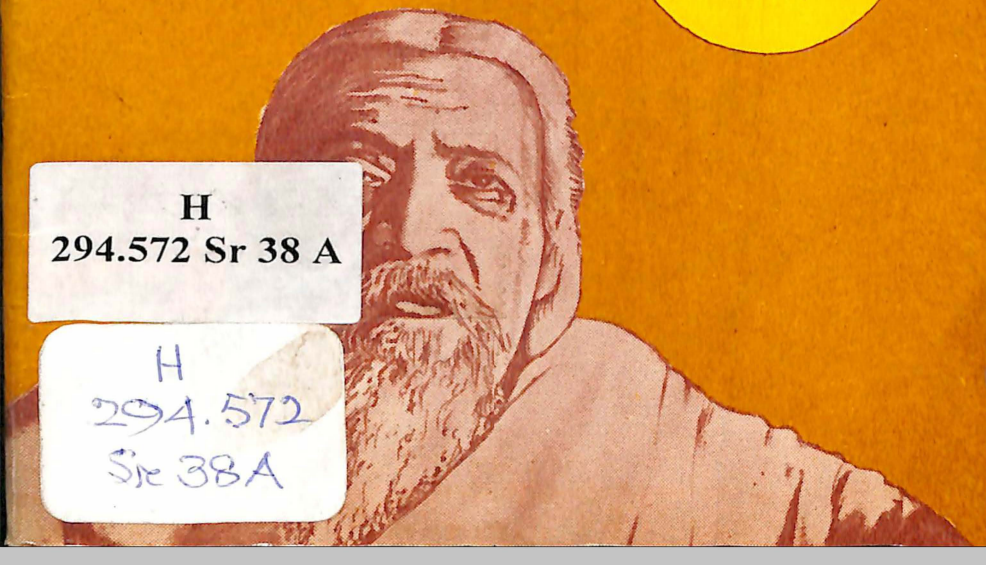

H
294.572 Sr 38 A

H
294.572
Sr 38A

श्री अरविन्द और भारत

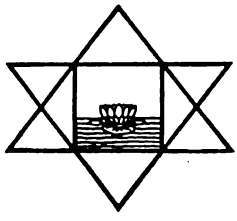

डॉ० मीरा श्रीवास्तव

अहनु प्रकाशन
इलाहाबाद

CATALOGUED

प्रकाशक :
डॉ० दमयन्ती श्रीवास्तव
89, टैगोर टाउन
इलाहाबाद
प्रथम संस्करण 1993

© **डॉ० मीरा श्रीवास्तव**

Library IIAS, Shimla
H 294.572 Sr 38 A
00099634

मूल्य - बारह रुपया

लेजर कम्पोजिंग :
अरविन्द प्रेस
165/5, साउथ मलाका, इलाहाबाद
मुद्रक :
भार्गव आफसेट
बाई का बाग, इलाहाबाद

देश और राष्ट्रीयता

—श्री अरविन्द

देश ही है राष्ट्रीयता की प्रतिष्ठा-भूमि, राष्ट्र नहीं, धर्म नहीं, और कुछ भी नहीं, एक मात्र देश। राष्ट्रीयता के और सब उपकरण गौण हैं पर हैं उपयोगी, देश ही है मुख्य और आवश्यक। बहुत सी परस्पर विरोधी जातियाँ एक देश में निवास करती है, उनमें कभी भी सद्भाव, एकता मैत्री नहीं थी, परन्तु इसमें भय क्या ? जब एक देश, एक माँ है तब एकदिन एकता आकर ही रहेगी, अनेक जातियों के मिलने से एक बलवान, अजेय राष्ट्र उत्पन्न होगा ही। धर्म मत एक नहीं है, सम्प्रदाय-सम्प्रदाय में चिर विरोध है, मेल नहीं, मेल की आशा भी नहीं, फिर भी भय की कोई बात नहीं। एक दिन स्वदेश मूर्तिधारणी माँ के प्रबल आकर्षण से छल, बल, साम, दण्ड और दान से मेल होकर ही रहेगा। साम्प्रदायिक विभिन्नता भातृभाव में, मातृ प्रेम में डूब जायेगी। एक देश में विभिन्न भाषायें है, हम एक दूसरे के भाव में प्रवेश नहीं कर पाते, हृदय में हृदय के आबद्ध होने के पथ में अभेद्य प्राचीर खड़ी हुयी है, बड़े कष्ट से उसे पार करना होता है, एक जीवन एक विचार की धारा सबके मन में प्रवाहित है, प्रयोजन की प्रेरणा से साधारण भाषा की सृष्टि होगी ही, या तो वर्तमान किसी भाषा का आधिपत्य स्वीकृत हो या एक नयी भाषा की सृष्टि होगी, माँ के मन्दिर में सब उसी भाषा का व्यवहार करेंगे। इन सब बाधाओं से कार्य हमेशा के लिए नहीं रुका करता, माँ का प्रयोजन, माँ का आकर्षण, माँ के प्राणों की कामना विफल नहीं होती, वह सभी बाधाओं और सभी विरोधों को अतिक्रम करती है, विनष्ट करती है, विजयी होती है। एक माँ के गर्भ से जन्म हुआ है, एक माँ की गोद में निवास करते हैं, एक माँ के पंच भूत में मिल जाते हैं आन्तरिक सहस्त्र विवाद होने पर भी माँ की पुकार पर एक हो जायेंगे।

यही है प्राकृतिक नियम, सभी देशों के इतिहास की शिक्षा, देश ही है राष्ट्रीयता की प्रतिष्ठा भूमि, वह सम्बन्ध अव्यर्थ है, स्वदेश रहने पर राष्ट्रीयता का आना अवश्यम्भावी है। एक देश में दो जातियाँ चिरकाल नहीं रह सकतीं, मिलन होगा ही। दूसरी ओर एक देश न हो, जाति, धर्म, भाषा एक हो भी तो उससे कोई लाभ नहीं, एक दिन स्वतंत्र जाति की सृष्टि होकर रहेगी। अलग-अलग देशों को युक्त कर एक बृहद साम्राज्य बनाया जा सकता है। साम्राज्य ध्वंस हो जाने पर फिर से स्वतंत्र राष्ट्र उत्पन्न होता है, कई बार वह अन्तर्निहित स्वाभाविक स्वतंत्रता ही साम्राज्य नाश का कारण बनती है।

परन्तु यह फल अवश्यम्भावी होने पर भी मनुष्य के प्रयास से, मनुष्य की बुद्धि से या बुद्धि के अभाव से वह अवश्यम्भावी प्राकृतिक क्रिया देर या सबेर फलवती होती है। हमारे देश में कभी भी एकता नहीं रही किन्तु चिरकाल एकता की ओर एक झुकाव था, प्रवाह था, हमारे इतिहास में भारत के विभिन्न अंगो ने एक दूसरे को आकृष्ट किया। इस प्राकृतिक प्रयास की कुछ प्रधानबाधाएं थी, पहली बाधा थी प्रादेशिक विभिन्नता, दूसरी थी हिन्दू मुसलमान का विरोध और तीसरी थी मातृ दर्शन का अभाव। देश का वृहद आकार, यातायात में कठिनाई और विलम्ब, भाषा की विभन्नता है प्रादेशिक विभिन्नता के प्रधान सहायक। शेषोक्त बाधा के अतिरिक्त अन्य सभी बाधाएं आधुनिक वैज्ञानिक सुविधाओं से निस्तेज पड़ गयी हैं। हिन्दू मुसलमान का विरोध होने पर अकबर भारत को एक करने में समर्थ हुये थे, यदि औरंगजेब निकृष्ट बुद्धि के वश न होता तो काल के महात्म्य से, अभ्यास से विदेशी आक्रमण के भय से इंग्लैण्ड के कैथोलिक और प्रोटेस्टेंन्टों की तरह भारत में भी हिन्दू और मुसलमान सदा के लिए एक हो जाते। औरंगजेब की बुद्धि के दोष से, कुछ आधुनिक कूटबुद्धि अंग्रेज राजनीतिज्ञों के उकसाने से वह विरोध प्रज्वलित हो अब बुझना ही नहीं चाहता। परन्तु प्रधान बाधा है मातृ दर्शन का अभाव।

हमारे प्रायः सभी राजनीतिज्ञ माँ के सम्पूर्ण स्वरूप का दर्शन करने में असमर्थ थे। रणजीत सिंह या गुरुगोविन्द ने भारत माता को न देख पंचनद माता को देखा था। शिवाजी और बाजीराव ने भारत माता को न देख हिन्दुओं की माता को देखा था। अन्यान्य महाराष्ट्रीय राजनीतिज्ञों ने महाराष्ट्र माता को देखा था। हमने भी बंग भंग के समय बंगमाता का दर्शन किया था-वह दर्शन अखण्ड दर्शन था। अतएव बंगदेश की भावी एकता और उन्नति अवश्यंभावी है, किन्तु भारत माता की अखण्ड मूर्ति अभी भी प्रकट नहीं हुयी है।

जिस दिन हम अखण्ड स्वरूप मातृ मूर्ति के दर्शन करेंगे, उसके रूप-लावण्य से मुग्ध हो उसके कार्यों में जीवन उत्सर्ग करने के लिये उन्मत हो उठेगें, उस दिन वह बाधा तिरोहित हो जायेगी, भारत की एकता स्वाधीनता और उन्नति सहज साध्य हो जायेगी। तब भाषा भेद से कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी, सभी अपनी-अपनी मातृ भाषा की रक्षा करते हुए साधारण भाषा के रूप में हिन्दी भाषा को ग्रहण कर उस बाधा को दूर करेंगे। हम हिन्दू मुसलमान के भेद की वास्तविक मीमांसा कर सकेंगे। मातृ दर्शन के अभाव में उन बाधाओं को दूर करने की बलवती इच्छा न होने से ही कोई उपाय नहीं सूझता, विरोध तीव्र होता जा रहा है। किन्तु अखण्ड स्वरूप चाहिए, यदि हम केवल हिन्दू की माता, हिन्दू राष्ट्रीयता की नींव के रूप में मातृ दर्शन की आकांक्षा का पोषण करें तो फिर उसी पुराने भ्रम में पतित हो राष्ट्रीयता के पूर्ण विकास से वंचित रह जायेंगे। (श्री अरविन्द की 'बंगला रचनाएँ' से उद्धत) ●

I

राष्ट्रीयतावाद के पैगम्बर

स्वतन्त्रता के बाद के भारत को देखने पर जो निराशा होती है उसमें राष्ट्रीयता की गौरवमयी चर्चा करना अप्रासंगिक लगता है। सर्वत्र वृत्तियों की तुच्छता, पद-एषणा, धन-लोलपुता, स्वार्थान्धता, अहमन्यता, धोखा देने का वाक्-लाघव, कर्त्तव्यच्युति, धूर्तबुद्धि की कूकर, श्रृगाल या गिद्ध वृत्ति देखकर यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि भारत की अपनी समष्टिगत अंतरात्मा है भी या नहीं? अहिंसा की शक्ति, भ्रातृत्व की समता कुछ भी असर नहीं दिखाती। कारण क्या है? भारतीय आचरण, राष्ट्र के स्तर पर, इतना दूषित और गर्हित हो उठा है कि उसे केवल अहिंसा की मौन उपासना से पवित्र नहीं किया जा सकता। बल्कि राष्ट्रमाता की वेदी पर एक ऐसे यज्ञ के अनुष्ठान की आवश्यकता लगती है जिसमें कल्मष झोंक दिया जाय, जो निखरने लायक है वह उस अग्निशिखा में जल कर निखर आये, जो बिल्कुल निःसत्व है वह धू धू करके जल जाय, राख हो जाय। इस यज्ञ के अनुष्ठान के लिये व्रती, तपः साधक स्वदेशमातृका के आराधकों की जरूरत है। इस साधना को श्री अरविंद ने स्वतन्त्रता से पूर्व अंग्रेजों से लोहा लेने के लिए पहले बंगाल में, फिर पूरे देश में जगाया था। इसका मन्त्र था "वन्देमातरम्" जो बंगभंग के समय सहस्र कंठों में गूँज उठा और उसका पीठ था समूचा भारतवर्ष जिसकी कल्पना श्री अरविंद ने भवानी के मन्दिर के रूप में की। उसी भावनी की प्रतिष्ठा बीसवीं शताब्दी में बंगाल के केहरि श्री अरविंद ने अपनी उद्घोषक वाणी और हवितव्य कर्म के द्वारा किया। यही उनका राष्ट्रीयतावाद था, कोई स्लोगन, भाषण या प्रचार नहीं।

श्री अरविंद का राष्ट्रीयतावाद ऋषि दृष्टि से देखा हुआ भारत का सनातन स्वरूप है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि भारत का रूप विश्व के अन्य राष्ट्रों के रूप से नितान्त भिन्न है। उसका निजत्वअपने उत्स और प्रकार में मूलतः आध्यात्मिक है, आत्मा पर प्रतिष्ठित, उससे परिचालित! उसी से प्रेरित होकर भारत स्वयं को मुक्त कर सकता है, बाहरी पराधीनता से मुक्ति तो सोपान मात्र है। असली उद्योग है आंतरिक मुक्तिका, नाना प्रकार की असंस्कृत वृत्तियों से मुक्ति। अपने को आंतरिक रूप से स्वाधीन करके भारत अपने राष्ट्रीय स्वरूप की सच्ची अभिव्यक्ति करेगा। उसकी यह आंतरिक मुक्ति उसके लिये ही नहीं, संपूर्ण विश्व के लिये प्रथ-प्रदर्शन का काम करेगी। उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि के सामने यह आविर्भूत देखा कि भारतमाता कोई

काव्यमयी कल्पना नहीं है, वह एक जीवन्त सत्ता, एक स्वयंस्फूर्त चेतन-आत्मा है; एक देवी-शक्ति जिसे संसार में अपना संदेश और कर्त्तव्य वहन करना है। जिसका हम आद्या-शक्ति कहकर प्रतिवर्ष दुर्गापूजा में आवाहन करते हैं, दो युगों पूर्व राम ने रावण को परास्त करने के लिये जिसकी अर्चा की थी, भारतामाता उन्हीं दिव्यमाता का सचेतन रूप हैं, परमेश्वर की चिन्मयी शक्ति जो सारी सृष्टि को थामे रहती है। भारतमाता उसी की काय-व्यूह हैं, जो भारत-राष्ट्र के विकास-क्रम का निर्देशन कर रही हैं; उसकी अंतर्यामी शक्ति और अंतरात्मा हैं। इसीलिये भारत का स्वधर्म चिन्मय शक्ति का विचरण है, मात्र भौतिकता का नाम-जप नहीं । जो इसके सच्चे स्वरूप, इसके स्वधर्म के प्रति सचेत हो सकेंगे, अपने को भारती-शक्ति को समर्पित कर सकेंगे, उन्हें माता अपना यंत्र बनायेगी, अपना सैनिक चुनेगी और उनके माध्यम से अपना कार्य संपन्न करेगी, अपना संदेश प्रसारित करेगी। अपनी पत्नी को पत्र में श्री अरविन्द ने लिखा था : "अन्य लोग स्वदेश को एक जड़ पदार्थ, कुछ मैदान, खेत, वन, पर्वत, नदी भर जानते हैं; मैं स्वदेश को माँ जानता हूँ, भक्ति करता हूँ, पूजा करता हूँ। .....मैं जानता हूँ कि इस पतित जाति का उद्धार करने का बल मेरे अन्दर है, शारीरिक बल नहीं, तलवार या बन्दूक लेकर मैं युद्ध करने नहीं जा रहा हूँ, ज्ञान का बल है। क्षात्र तेज एक मात्र तेज नहीं है, ब्रह्म तेज भी है । वह तेज ज्ञान के ऊपर प्रतिष्ठित होता है।" उनके इस भाव को लोग उस समय पागलपन ही समझते थे, किन्तु बंगाल का इतिहास साक्षी है कि उन्होंने ब्रह्मतेज से क्षात्र तेज भी पैदा कर लिया, और वे सक्रिय राजनीति में कूद पड़े। इस बात से वे वाकिफ थे कि गम्भीर बातों को लोग मज़ाक में उड़ाकर अपने कर्तव्य से छुटकारा पा जाना चाहते हैं। तभी उसी पत्र में उन्होंने लिखा था: "और एक दोष है, तुम्हारे स्वभाव का नहीं, काल का दोष। .....लोग गम्भीर बात को भाव से नहीं सुनते–धर्म, परोपकार, महत् आकांक्षा, महत् प्रयास, देशोद्धार–जो कुछ भी गम्भीर जो कुछ उच्च और महत है उन सबको लेकर हँसी ठट्ठा करते हैं, सब कुछ हँसकर उड़ा देना चाहते हैं,.....थोड़ी बहुत मात्रा में हम सभी इस दोष से दूषित है.....मन के इस भाव को दृढ़ मन के द्वारा भगाना होता है।"

इस गम्भीर भाव का जागरण 'बन्दे मातरम्' मंत्र के द्वारा उन्होंने किया। हृदय को उस भावनी का मंदिर बनाने को कहा, कर्म को उसका यज्ञ जिसकी सहस्र भुजायें देश के सहस्र-सहस्र लोग हैं, जिसका त्रिनेत्र भारत का अध्यात्मदीप्त ज्ञान है, जिसकी समृद्धि का दुकूल श्यामल-शस्य है। ऐसी माता को कौन अबला कह सकता है? उस चिन्मयी मूर्ति को भाव, ज्ञान, और कर्म में प्रतिष्ठित करके ही भारत के स्वरूप को उजागर किया जा सकता है, पाश्चात्य मनोभावों की नकल करके नहीं।

भारत के इस स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए श्री अरविन्द ने 'वन्देमातरम्' पत्र का संपादन किया। श्री विपिन चन्द्र पाल आदि "New-India" पत्र चला रहे थे, उन्होंने जब श्री अरविन्द से इसका भार सम्हालने को कहा तो श्री अरविन्द ने उसका नाम 'वन्देमातरम्' करके चलाया। स्पष्ट ही यह सोद्देश्य था, नये भारत की रचना इसी मंत्र से संभव है, यह उन्होंने तभी जान लिया था। 1903 में ''वन्देमातरम्'' घर-घर दिखाई दिया–नई भाषा, नया स्वर। उन्होंने 'वन्देमातरम्' की व्याख्या करते हुए लिखा : ''.....जब प्रेम जीवन्त हो उठता है तब भागवत महिमा देशरूपा मातृभूमि में प्रकाशित होती है, उनका स्थान, उनके सम्बन्ध में पूर्ण चेतना आराधना, निरवच्छिन्न शुभकामना एवं सेवा के बीच से ही पूर्णरूप से पाई जाती है।''

श्री अरविन्द की अग्निगर्भा भाषा व क्रान्तिकारी विचारधारा ने देशवासियों को नये भावों से अनुप्राणित किया। वन्देमातरम् ने देश की चिन्ताधारा में विप्लव उत्पन्न कर दिया, इतिहास को मोड़ दिया, नये और प्राचीन का संघर्ष अनिवार्य हो उठा, मॉडरेट पंथियों से हटकर नवीन दल (नेशनलिस्ट पार्टी) समर्थकों का सर्जन हुआ। इसी पत्र के साथ उन्होंने बंगला में ''युगान्तर'' का संपादन भी किया। अपने इस राष्ट्रीय भाव को उन्होंने केवल पत्रों के माध्यम से देश भर में छिटकाया, बल्कि राजनीति में सक्रिय भाग भी लिया। कलकत्ता में होने वाली नेशनल कांग्रेस में उन्होंने प्रस्तावित किया कि देश की अपनी राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली होनी चाहिए-साहित्यिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक जो देश की जरूरतों से मेल खाती हो, यहाँ के स्वभाव के अनुकूल हो और यहीं से नियंत्रित हो। इसके लिये उन्होंने कलकत्ता का ''नैशनल कालेज'' खोला जिसके प्राचार्य वे स्वयं हुए। सक्रिय राजनीति में व्यस्त हो जाने के कारण उन्हें इस कालेज के अध्यक्ष पद से इस्तीफा देना पड़ा। विदा भाषण में उन्होंने कहा कि इस कालेज की स्थापना नये भारत के केन्द्र के रूप में हुई थी, नई पीढ़ी का उत्तरदायित्व है, वे इस परम्परा को आगे बढ़ायें। यदि वे धनी या महान बनें तो अपने दम्भ की संतुष्टि के लिये नहीं वरन् भारत को समृद्ध करके अन्य राष्ट्रों की पंक्ति में गौरवपूर्ण स्थान प्रदान करवायें, यदि विदेश में ज्ञानार्जन करें तो लौटकर उससे अपनी देशमाता की सेवा करें। अपनी देह, बुद्धि, आत्मा को भारतमाता की सेवा के लिये प्रशिक्षित करें जिससे कि भारत का स्वर्णिम अतीत नये रूपों में पुनः अपनी आत्मा को प्रतिष्ठित कर सके।

बम्बई में 'नेशनल इंन्स्टिट्यूशंस' की विराट सभा में श्री अरविन्द ने 1908 में एक लम्बी वक्तृता दी। उस सभा में उन्हानें बताया कि राष्ट्रीयतावाद क्या है। उन्होंने समझाया कि यह एक धर्म है जो ईश्वर से आया है, एक आस्था है जिसे जीना

होगा, धार्मिक भाव से ही इसे ग्रहण करना होगा। लोग केवल इसके यंत्र है। यदि सचमुच कोई वृहत्तर स्रोत राष्ट्रीय भावना का स्रोत है तभी देश बच सकता है। यदि कोई उच्च सत्ता पर निर्भर नहीं करता तो उन्हीं वस्तुओं पर निर्भर करेगा जो लोग उसे दे सकते हैं। पर इससे भारत का कल्याण असंभव है। इस राष्ट्र-धर्म में इतनी बड़ी शक्ति है कि कोई भौतिक सत्ता इसे रोक नहीं सकती। परीक्षा की घड़ी निकट है, इस धर्म को अपने अन्दर से प्रकट करने का समय आ गया है जिससे कि हम जो कुछ भी करें वह आंतरिक सत्य का कर्म हो। तभी पूरा राष्ट्र जागेगा, सारे व्यक्ति जगेंगे दिव्यशक्ति से भरकर, सर्वशक्तिमान की प्रेरणा से स्फूर्त होकर। ईश्वर स्वयं उपस्थित है और यह उसी का 'मिशन' है। इस महान पुरातन राष्ट्र के लिये उसके पास कुछ कार्य है, इसलिये वह इस राष्ट्र में जन्म ले रहा है। राष्ट्रीयतावाद का यह धर्म कोई संकीर्ण मत या संप्रदाय या पार्टी नहीं है। भौतिकता की सीमाओं पर विजयी होने वाला यह वह धर्म है जो वैज्ञानिक अनुसंधानों और दार्शनिक चिन्तन को एक सूत्र में पिरो सकता है। राष्ट्रीयतावाद कोई मत या आस्था मात्र नहीं है, यह सनातन धर्म है। इसी के उत्थान के साथ देश का उत्थान होता है, इसी के ह्रास के साथ उसका पतन। और अगर यह सनातन धर्म मर सकता तो भारत भी निःशेष हो जाता। श्री अरविन्द ने अन्त में राष्ट्रीयतावाद को इस ऊँचे सिंहासन पर प्रतिष्ठित देखा और उत्तरपाड़ा अभिभाषण में जेल से छूटने के बाद इसकी घोषणा की। भारत माता के इसी शाश्वत स्वरूप के दर्शन और कर्म जगत में उसे उतारने के कारण श्रीयुत चित्तरंजनदास ने कहा था कि अलीपुर जेल का मामला खत्म हो जाने के बहुत बाद, श्रीअरविन्द के पार्थिवदेह के चले जाने के बहुत बाद वे देश भक्ति के कवि, राष्ट्रीयतावाद के पैगम्बर और मानवता के प्रेमी के रूप में स्मरण किये जायेंगे। उनकी वाणी न केवल भारत में वरन् देश-देशान्तर में गूंजती रहेगी।*

●

---

* "Long after this controversy is hushed into silence, long after this turmoil, this agitation will have ceased, long after he is dead and gone, he will be remembered as the Poet of Patriotism, Prophet of Nationalism and Lover of Humanity. Long after he is dead and gone his words will be echoed and re-echoed not only in India, but over the distant seas and distant lands."

II

जन-जनार्दन

जिस देश में बुद्धिजीवी (ब्रह्मण् वर्ग) शालीनतापूर्वक कूट तर्कों या बिर्लज्जतापूर्वक उद्धत झूठों से दूसरो के स्वत्व और अधिकार को चालाकी से अथवा डंके की चोट पर हनन कर सकता हो, और हनन करने का रास्ता दिखा सकता हो, सिखा सकता हो वहां समाज के नेतृत्व के लिये किस वर्ग से आशा की जा सकती है? राजन्य वर्ग से? उस पर तो सदैव ही ब्रह्मण् का अंकुश वांछनीय होता है, क्योंकि राजमद एक ऐसा मत्त हाथी है कि सामाजिक आलोचना से उसकी सधी चाल को विचलित नहीं किया जा सकता। जब तक कि बुद्धि का अंकुश ही उसे सही रास्ते पर न ले जाये तब तक विपथ या कुपथमें जाने की संभावना ही ज्यादा रहती है। इसी ख़ौफ़ से सदाशय व्यक्ति राजनीति में सत्ता पकड़ने को राज़ी नहीं होते थे, वे टुच्चे प्रकार के समझौते नहीं कर सकते। और वैश्य वर्ग में समाजवाद की परिकल्पना ही अंकुरित नहीं हो पाती क्योंकि भौतिक समृद्धि के उपभोग की जिस अतिरिक्त वासना से वह धनसंचय करता है, उससे प्राप्त सुविधाओं को क्या वह सहज ही किसी के हवाले कर देगा? रहा शूद्र वर्ग : उसमें शिक्षा संस्कार का अभाव न भी हो तो भी विशद व्यापक सामाजिक वितरण-व्यवस्था में व्यक्तित्व के संकोच के कारण वह क्या निर्णय दे पाता है : यह तो व्यावहारिक अनुभव है।

ऐसी स्थिति में श्री लोहिया का समाजवाद एक स्वप्न या वास्तविकता के धरातल पर सतही योजना मात्र रह गया है। वस्तुतः समाजवाद कोई बाहरी ढाँचा नहीं है, वह जन-जन के भीतर भड़क रहे स्वत्व की पहचान का तकाज़ा है। इस स्वत्व को जितना ही कुचला जाता है उतना ही यह उभरता है, अपने को फुफकार के साथ खड़ा कर लेता है। तभी सामाजिक क्रान्ति होती है, समाजवाद के प्रचार से नहीं; स्वत्व और स्वाभिमान अपना हक़ खुद छीन लेते हैं, उसके लिये प्रवचन सुनने का धैर्य या सब्र का पाठ पढ़ने का समय नहीं रहता। यही स्वाभिमान और स्वत्व का तेज हमारे युवा वर्ग में देखा जा सकता है, बशर्ते उन्हें न्यस्त स्वार्थों के जाल में फंसाकर परास्त न कर दिया जाए। इसीलिए जिस 'सम्पूर्ण क्रांति' की बात उठाई गई है वह उसी वर्ग के बूते की बात है। बाकी अधेड़ लोग तो समझौता या चापलूसी से काम बनाते हैं, और बूढ़े लोग संजीदगी से सब कुछ स्वीकार लेते हैं।

मगर जैसा कि पहले ही निवेदन किया गया है कि देश के मौजूदा वातावरण में सम्पूर्ण क्रान्ति की सफलता के आसार बहुत आशाजनक नजर नहीं आते। अगर बुद्धि रागद्वेष के जटिल जाल से निगड़बद्ध हो, प्राण सत्ताभोग या धनभोग की आकांक्षा से चंचल या कठिन बन जाय, और बाकी वर्ग निष्क्रिय हो जायँ तो 'क्रांति' किस तरह सम्भव है? संपूर्ण स्थापित मायाजाल को तोड़ना कैसे शक्य है? अपनी सीमित शक्ति से इस दुर्धर्ष संघर्ष को झेलना कहाँ तक संभव है? बाहरी 'स्वराज्य' तो अपेक्षाकृत आसान था, इस आंतरिक 'स्वराज्य' की स्थापना बहुत कठिन है। लेकिन बिना इसकी स्थापना के स्वतंत्रता का उद्देश्य भी निष्फल हो जाता है। स्वतंत्रता के बाद समता और भ्रातृत्व की स्थापना के बिना स्वाधीनराष्ट्र की कल्पना निःसत्व है। इनसे गठित स्वराज्य वही स्थापित कर सकता है जो स्वयं 'स्वराट्' हो : रागद्वेष की कुटिल मुद्राओं से अप्रभावित, उपभोग की लालसा से अविचलित, दूसरों पर राज्य करने की भावना से अमंथित, निस्पृह। ऐसे व्यक्ति ही इस देश में कुछ क्रांति ला सके हैं। गांधी जी अथवा लोकनायक जयप्रकाश जी के अभाव में इस देश के भाग्य की कल्पना करना संभव नहीं।

श्री अरविन्द भी इसी परम्परा में आते हैं। आज से प्रायः 90 वर्ष पहले देश में जिस क्रांतिकारी विचारधारा का सूत्रपात उन्होने किया था उसके पीछे बड़ी गहरी निष्ठा और आत्मतेज था। उनके भाषणों में उनके व्यक्तित्व के सकर्मक तेज को आज भी सुना जा सकता है। राष्ट्रवाद उनके लिये कोई 'स्लोगन' नहीं था। उसको उन्होंने धर्म, सनातन धर्म के स्तर पर उठा दिया था। इसी धर्म के उत्थान में वह न सिर्फ भारत का वरन् समूची मानवता का कल्याण देखते थे। इस धर्मप्राण देश में यही प्रेरणा शायद ज्यादा स्वाभाविक है, औसत भारतीय के लिये उन्होंने जेल से छूटने के बाद उत्तरपाड़ा अभिभाषण में कहा : "I say no longer that nationalism is a creed, a religion, a faith; I say that it is the Sanatan Dharma which for us is nationalism."

इस सनातन धर्म के मूल में 'वासुदेव' की कल्पना नहीं, अनुभव निहित हैं। सर्वभूतों में वासुदेव की उपस्थिति के अनुभव से, या महज आस्था से हम उस महत तत्व के आगे अपनी समस्त क्षुद्रताएं विसर्जित कर सकते हैं, 'स्व' 'पर' की कठिन श्रृंखलायें खुद खुल जाती हैं। भौतिक चीजों का कंडुलीमार आकर्षण अपने आप ऋजु हो जाता है। यह सनातन धर्म कोई संप्रदाय या संकुचित अर्थ में धर्म नहीं है। यही एकमात्र ऐसा धर्म है जो विज्ञान के आविष्कारों और दर्शन की चिन्ताओं को

अपने भीतर समाहित करता हुआ भी भौतिकतावाद पर विजयी होता है क्योंकि यह मनुष्य से ईश्वर की निकटता को सजीव करता है और अपनी परिधि में उन सभी चीजों को समेट लेता है जिससे मनुष्य ईश्वर की ओर बढ़ सकता है। इसका विश्वास है कि प्रभु सारे प्राणियों, सब वस्तुओं में है, उसी से हमारा अस्तित्व है। यह विश्वास समझने के लिये ही नहीं, जीने के लिये वह हमें देता है। धर्म और जीवन को यह अलगाता नहीं। वासुदेव की लीला में हम किस तरह अपनी भूमिका अदा करें–सनातन धर्म इसी का आख्यान है। श्री अरविन्द के ही शब्दों में : "This is the one religion that can triumph over materialism by including and anticipating the discoveries of science and the speculations of philosophy.....It is the one religion which shows what the world is, that it is the Lila of Vasudeva. It is the one religion which shows us how we can best play our part in that Lila, its subtlest laws and its noblest rules. It is the one religion which does not separate life in any smallest detail from religion....." (उत्तरपाड़ा भाषण)

अलीपुर जेल में वासुदेव का दर्शन और अनुभव करने के बाद ही श्री अरविन्द के ये उद्‌गार थे। राष्ट्र से यही वाणी कहने के लिये उन्हें आंतरिक आदेश प्राप्त हुआ था : "When you go forth, speak to your nation always this word, that it is for the Sanatan Dharma that they arise, it is for the world and not for themselves that they arise. I am giving them freedom for the service of the world. When therefore it is said that India shall rise, it is the Sanatan Dharma that shall rise.....It is for the Dharma and by the Dharma that India exists." (वही)

बुद्धि के विकारों से अलगयुवावर्ग शायद भारत के इस सनातन धर्म को संभालने में ज्यादा सक्षम होगा। इसीलिये जब श्री अरविन्द को कुछ संशय हुआ तो उसी दिव्यवाणी ने उनसे कहा कि मैं ही राष्ट्र के उत्थान में हूं, मैं वासुदेवनारायण हूं। मैं जो संकल्प करूंगा वही होगा। जिसे मैं लाना चाहूंगा उसे कोई मानवी शक्ति रोक नहीं पायेगी। और इसी सिलसिले में युवाशक्ति के भीतर अपने कार्य को सक्रिय होते दिखाते हुये उस वाणी ने कहा कि उसी में यह महान राष्ट्र उत्थित हो रहा है। 'ये तुमसे बड़े हैं ये तुमसे ज्यादा कुशलता से राष्ट्र का कार्य करेंगे' : "This is the young generation, the new and mighty nation that is arising at my

command. They are greater than yourself. What have you to fear ? If you stood aside or slept, the work will be done. If you are cast aside tomorrow, here are the young men who will take up your work and do it more mightly than you have ever done."

युवावर्ग यह कार्य इसलिये कर सकता है क्योकि उसमें तीन गुण विशेषरूप से पाये जाते हैं : आस्था, साहस और बलिदान का भाव। 'वर्तमान स्थिति' (The Present Situation) नामक लम्बे भाषण में श्री अरविन्द ने राष्ट्रवाद के लिये इन्हीं तीन गुणों का विस्तार से आख्यान किया। उनका कहना था कि स्थिति का तकाज़ा कोई राजनैतिक प्रोग्राम नहीं है यद्यपि स्वदेशी, बॉयकॉट, राष्ट्रीय शिक्षा, न्याय आदि विषयों पर उन्होंने विस्तार से लिखा था। एक सत्य को, जिसे उन्होंने स्वयं और जो उनके क्रान्तिकारी साथी थे उन्होंने स्थापित करने की कोशिश की वह यह कि किसी राजनैतिक कार्यक्रम मात्र से (जैसे राष्ट्रीय शिक्षा आदि) इस देश का उद्धार संभव नहीं है। उदाहरण के लिए स्वदेशी से कुछ ज्यादा भौतिक समृद्धि आ सकती है, इस समृद्धि के आ जाने पर हम इसे सुरक्षित रखने की कोशिश करेंगे, जैसा कि रोमन साम्राज्य में था। लेकिन केवल औद्योगिक और आर्थिक समृद्धि ही किसी राष्ट्र को जीवन प्रदान नहीं करती, समय आने पर ऐसा राष्ट्र सोता हुआ सिद्ध हो सकता है। अतः सारे प्रोग्राम सिर्फ कार्य करने के तरीके हैं, कुछ ऐसी मूर्त रूपरेखायें जिन पर ईश्वरीय शक्ति एक राष्ट्र में कार्य कर रही है। लेकिन केवल ये रूपरेखायें ही एकमात्र आवश्यक तत्व नहीं हैं। सारे प्रलोभनों, सारे खतरों और बाधाओं के विरोध में खड़े होने के लिये जिस शक्ति की जरूरत होती है वह किसी बाहरी विश्वास में नहीं आंतरिक आस्था में निवास करती है, एक तरह से हृदय के इस विश्वास में कि जो शक्ति उनका संचालन कर रही है वह अपराजेय है, दुर्धर्ष है, और वह अपना कार्य करके रहेगी। ईश्वर ने यह कार्य करने के लिये हमें अपना यंत्र बनाया है, और जब हमें फेंक दिया जायेगा तो वह बहुत सारे दूसरे लोगों को ले आयेगा। वह दुर्धर्ष शक्ति व्यक्ति विशेषकी मुखापेक्षी नहीं है। इसलिए श्री अरविन्द का राष्ट्रवाद राष्ट्र में ईश्वर का साक्षात्कार था, इस राष्ट्र में रहने वाले सहस्र कोटि मनुष्यों में वासुदेव का साक्षात्कार। नहीं तो, यूरोपीय अर्थ में राष्ट्र का अर्थ होगा विदेशी शासक की जगह स्वदेशी शासक ले आना, अर्थात महज़ भौतिक परिवर्तन। इस बाहरी परिवर्तन से हम करोड़ों देशवासियों के लिये हृदय से कुछ भी महसूस किये बिना भी रह सकते हैं, जैसा कि अभी तक रहते आये हैं। इसमें देशवासियों के लिये यदि आंतरभाव

नहीं जगता तो हम उन्हें ऊँचा उठाने, उन सबको मुक्त और सुखी करने की बात नहीं सोच सकते। और इस सार्वजनिक मुक्ति और सुख का कार्य इतना कठिन है कि अगर अपने भीतर आस्था और निस्वार्थता की दिव्य शक्ति नहीं है तो बाकी सारी आसक्तियों से ऊपर नहीं उठा जा सकता। हम किसी ऐसी परिवर्तन के लिये कष्ट सहने को तैयार नहीं हो सकेंगे जिससे हमें व्यक्तिगत फायदा न हो। इसलिये ऐसे स्रोत से साहस कहां से आ सकता है? राष्ट्रवाद को धर्म के स्तर पर वरण करते ही ऐसी भीषण विरोधी शक्तियां उठ खड़ी होंगी जिन्हें सिर्फ भौतिक शक्ति से सामना नहीं किया जा सकता। किसी बड़ी शक्ति के अवतरण के साथ दैत्य और असुर भी पैदा होते हैं। और भी अवरन्दि का राष्ट्रधर्म ऐसा ही महत् जन्म हैं : राष्ट्र में अवतार का जन्म। इसलिये इसे कोई बाधा रोक नहीं सकती। यह एक ऐसा विकास होगा जिसे कोई शक्ति प्रतिहत नहीं कर सकती। और यदि किसी ने अपने अंदर उस शक्ति-तेज को ग्रहण किया है तो वह देख सकेगा कि ईश्वर भारत को अपेक्षाकृत बहुत छोटी अवधि में बदल देगा। एक बार घोषित हो जाने पर यह शक्ति तब तक अपना कार्य करती चली जायेगी जब तक कि सारा संसार उसे समझ नहीं लेता, जहां तक कि श्रीकृष्ण अपना देवत्व घोषित नहीं करते। तब यह सारा राष्ट्र दिव्यशक्ति से परिपूर्ण,उसकी प्रेरणा से परिस्फूर्त होगा। 'वर्तमान स्थिति' भाषण में ये ही विचार उन्होंने व्यक्त किये।

इस राष्ट्रशक्ति को अपने ही भीतर पहले जगाना होगा, तभी उसे बाहर लाया जा सकता है। श्री अरविन्द का कहना था कि नायक स्वयं हमारे अंदर है, हमारी अंतरात्मा में है। इसी का जागरण ज़रूरी है। तब जैसा कि अब कहते हुये पाये जाते हैं, लोग यह नहीं कहेंगे कि जनता इस विचार को ग्रहण करने में बहुत पिछड़ी है, कि लोग काम करने में बहतु सुस्त हैं, कि कोई सही नेता नहीं है,कि जो रास्ता हमें दिखाया जा रहा है उस पर हमें चलाने के लिये कोई भी व्यक्ति आगे आकर निर्देश देने योग्य नहीं है। तब दूसरों के खिलाफ शिकायतें नहीं रहेंगी क्योकि तब हमें किसी नेता की जरूरत नहीं रहेगी। नेता स्वयं हमारे भीतर है। अगर हम उसको खोज सकेंगे और उसकी वाणी सुन सकेंगे तब ऐसा नहीं होगा कि लोग हमारी बात नहीं सुनेंगे। तब वह वाणी दूसरों के भीतर भी अपना प्रत्युत्तर पायेगी। इसी शक्ति को श्री अरविन्द ने अपने भीतर पाया था और इसे ही राष्ट्र भर में जगाने की क्रान्ति का स्वप्न देखा और उसके लिये आध्यात्मिक तरीकों से साधना की। इसीलिये भारत की बाहरी स्वाधीनता से बढ़कर उन्होंने इसके आंतरिक गुणों की मुक्ति का प्रयास किया। और कहा कि जो सत्य ऋषियों ने उद्घाटित किया था उसे ही आधुनिक

संदर्भों में पुनरुद्घाटित करने की ज़रूरत है। हमारे भीतर से कुछ ऐसा जाना चाहिये जो सारे संसार को, समस्त मानवता का परित्राण कर सके। यह परित्राण धर्म के अभ्युदय से ही संभव है, संकुचित अर्थ में देशीय अर्थ में धर्म नहीं, व्यापक, सर्वभौम सनातन अर्थ में–जीवन में कुरूक्षेत्र में स्वार्थो की भीषण टकराहट में सर्वव्यापी वासुदेव का अनावरण। इस तरह के राष्ट्रधर्म को अपनाने के लिए सिर्फ़ राजनैतिक प्रोग्राम ही काफी नहीं हैं बल्कि चरित्र का आमूलचूल पुनर्गठन जरूरी है, राष्ट्रचरित्र का नये धरातल पर निर्माण जरूरी है। इस बड़े सत्य को दूसरों के सामने घोषित करने से पहले अपने जीवन को उसके आकार में गढ़ना होगा। राष्ट्र के जीवन को उस रूपाकार में गलना होगा। तभी यह समझ में आयेगा कि जिस कार्य को करने के लिये हमें पुकारा गया है वह महज राजनैतिक कार्य नहीं है, महज राजनैतिक परिवर्तन नहीं है बल्कि ईश्वर का कार्य है। उन्हीं के शब्दों में : "Because God is there, and it is his Mission, and he has something for us to do. He has a work for this great and ancient nation. Therefore he has been born again to do it,....." (The Present Situation)

स्वराज्य एक तरह की सरकार का दूसरे तरह की सरकार से स्थानान्तरण नहीं है। यह हमारे राष्ट्रीय जीवन की संतृप्ति है : व्यक्ति, परिवार, समुदाय, राष्ट्र, मानवता, सभी में ईश्वर की संसिद्धि । यही स्वराज्य है। इसके बिना समाजवाद अधूरा रह जाता है क्योंकि उसको गिराने के लिये बार बार अधिनायकवाद बदले वेश में नया मुखौटा लगाकर उठ खड़ा हो सकता है : इसे इतिहास ने सिद्ध कर दिया है। भारत में 'स्वराज्य' का विशिष्ट अर्थ होता है, अपने भीतर देवत्व का उत्थान, अंतरात्मा का जागरण और उसकी बाहरी प्रतिष्ठा। इसी अर्थ में तुलसी ने अंतर्यामी से बढ़कर बहिर्यामी को माना। बिना ईश्वरत्व के बहिर्यामी हुये मनुष्य की प्रगतिकामी शक्तियों को कौन साध सकता है? चतुर्दिक विघटनकारी स्थितियों में, कौरव स्वार्थो के बीच, हर युग में बार-बार जो 'संभव' होता है वह है जनजीवन का त्राता जनार्दन, वासुदेव: धर्म के अभ्युत्थान के लिये, किसी बाहरी उद्देश्य के लिये नहीं। उसी अभ्युत्थान का सक्रिय प्रयास श्री अरविन्द ने अपने छोटे से राजनैतिक काल में किया। उन्होंने खुद उस सत्य को जिया, इसलिए घोषित किया : "Swaraj is not the colonial from of government nor any form of Government. It means the fulfillment of our national life. That is what we seek, that is why God has sent us into the world....."

III

मानव भविष्यत्

वर्तमान से ही भविष्य निकलता है। यदि हम वर्तमान को अनदेखा करके मनुष्य के किसी भावी की कल्पना में फंसेंगे तो वह ऐतिहासिक यथार्थ का अंग नहीं बन पायेगा। और आज हम एक ऐतिहासिक मोड़ पर खड़े हैं। हमारा यह दायित्व है कि इतिहास-वेत्ता, समाजशास्त्री, दार्शनिक अथवा कवि/अलोचक होने के नाते हम उस मानव भविष्यत् को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आविर्भूत होता देख सकें। न सिर्फ देख सकें, बल्कि औरों को दिखा भी सकें, क्योंकि किसी भी विचार को अब सिर्फ श्रद्धावश कोई स्वीकार नहीं करता, उसके सत्य का साक्षात्कार करके ही आज का मनुष्य उसके प्रति श्रद्धावनत होता है, अंगीकार करता है। मानव भविष्यत् की पहली भूमिका के रूप में श्री अरविन्द ने अतिमानस के अवतरण की तपस्या की थी। वह पूरी हो चुकी है। अब इस अवतरण का परिणाम ही व्यष्टि और समष्टिरूप में मानव भविष्य बनेगा। जिस अतिमानसी मानव (Supermental Being) का साक्षात्कार श्री अरविन्द ने अपनी विकासयात्रा में किया था, उसे हमे ऐतिहासिक रूप से सिद्ध करने का दायित्व सौंपा गया है। हमें उसे न केवल अपने व्यक्तित्व में क्रमशः मूर्तिमान करना होगा, वरन् उसके सामाजिक परिवेश को भी गढ़ना होगा। बाकी जनसमूह तो इन्हीं चैतन्यमानवों से संवेदित होता रहेगा तब तक जब तक कि वह स्वयं उस विचार से आन्दोलित न होने लगे, और उसे अपने हृदय और जीवन का अंग न बनाये।

श्री अरविन्द के अनुसार मानव भविष्य उसके अध्यात्मिक रूपांतरण में निहित है। यदि यह रूपांतरण प्रभावी होना है तो एक साथ ही व्यक्ति और संघ-निकायों की अंतरात्माओं की ऐसी दीप्त श्रृंखलायें गढ़नी होंगी जिनमें दोनों के अहंकारों के लोहे गलकर उस आग को धारण कर सकें जो अतिमानस अपनी सौरऊर्जा से धरती के वातावरण और घटनाओं और जीवनस्थितियों के भीषण दबावों से व्यक्ति चेतना में धधका रहा है। इन दोनों के साथ-साथ गलने और एक साथ ढलने में ही मानव भविष्य का सूर्यालोक प्रकट होगा। पर है यह कार्य दुस्तर, बहुत ही मुश्किल :

Therefore if the spiritual change of which we have been speaking is to be effected, it must unite two conditions which have to be simultaneously satisfied, but which are most difficult to bring together. There must be the individual and the individuals who are able to see, to develop, to recreate themselves in the image of the spirit. and to communicate both their idea and its power to the mass. And there must be at the same time a mass, a society, a communal mind, or at least the constituents of a group body, th possibility of a group-soul which is capable of receiving and effectively assimilating, ready to follow and effectively arrive, not compelled by its inherent deficiencies, its defect of preparation to stop on the way or fall back, before the decisive change is made. **["THE HUMAN CYCLE"]**

ध्यान देना होगा कि इस आध्यात्मिक भविष्य के चरितार्थ होने के लिए दो तथ्यों की एक साथ विद्यमानता अभी से, वर्तमान में ही चाहिए। पहला, कुछ व्यक्ति जो न केवल श्रद्धालु हों बल्कि भविष्य की शक्तियों को वर्तमान में क्रियारत देख सकते हों अर्जुन की भाँति–able to see । नये युग के आने से पूर्व यह प्रज्ञाचाक्षुष मानव जरूरी है। मात्र संजय की तरह महाभारत देखने की साक्षीदृष्टि नहीं, उनका वर्णन विश्लेषण कर सकने की क्षमता ही नहीं, बल्कि वह दृष्टि जो पुराने के महासंहार में आविर्भूत होते हुए नये द्रष्टा की मूर्ति में अपने मानव-व्यक्तित्व को ढाल सके, अपने अंदर बाहर के व्यक्तित्व में उसे पूरी तरह विकसित करके नारायण का यंत्र बन सके To develop, to recreate themselves in image of the Spirit.

यह Spirit तो रूपांतर के आकांक्षी की सारथी आज भी है। इस समय "महाकाल" का नया रूप धारण करके आविर्भूत हो रही है। जिनमें इस नई महाशक्ति को देखने की आर्ष दृष्टि विकसित हुई है कि वे इसे देख सकते हैं। यह "Spirit" कालत्व या महाकाल का नया रूप धारण कर देशदेशान्तर में आविर्भूत हो रही है। यही मानव भविष्य गढ़ रही है समस्त भूमण्डल में। सच यह है कि अब हम गीता या भागवत से ही पूरी तरह परित्राण नहीं पा सकते। वे द्वापर और कलि की युगसंधि के महावाक्य थे! कलि और सत्य युग की संधि के पहावाक्य हमें तलाशने पड़ेंगे। हमारा वर्तमान पिछली युगसंधि से भीषणतर है। इस भीषण बेला में श्रीकृष्ण नहीं कल्कि भविष्यत् अवतार है। कोई अवतार दुबारा नहीं आता। इसलिए अगर

हम लौट-लौट कर पीछे देखेंगे तो सिर्फ "महाभारत" में फँसे रहेंगे, विश्वयुद्धों के युग में अविर्भूत होती हुई नई महाशक्ति और नये महाकाल के युगल को पहचान नहीं सकेंगे। इसलिए चाहिए एक नई दृष्टि जो हमारा यह भीषण युग ही हमें देगा, कोई प्रवचन, भाषण या शास्त्रवाक्य नहीं। हम जीवन से जूझने पर ही वह दृष्टि पाने के अधिकारी होंगे जैसे श्री अरविन्द ने देश की पराधीनता में स्वतंत्रता संग्राम में कूद कर अलीपुर जेल में युग-उन्मोचक दृष्टि पाई थी। जीवन सबसे बड़ी युद्धभूमि है, यही ऋषियों की दृष्टि को पकाता है और फलीभूत करता है। आज मानव जीवन जिस प्राणिक पैशाचिकता, मानसिक कूटता और नृशंस तार्किकता, दैहिक एषणाओं की उपभोक्ता संस्कृति के दलदल में फँसा हैं, उसी की पीड़ा मेंसे मानवभविष्यत् का ऊर्जास्रोत कमल बनकर खिलेगा, साथ ही ज्वाला बनकर उसीकी पंखुरियाँ बनेगा। इस समय तो वह भविष्य दृष्टि दिमाग की नसों को तोड़कर उभर रही है, शरीर की अवशता को मथकर मानव को चेतनमेरूदंड के बल खड़ा करने का प्रयत्न कर रही है, और विषादयोग को झकझोर कर एक नया मानव गढ़ रही है। यह दृष्टि संहार और रचना दोनों को एक साथ अपने दोनों हाथों में थामे हुये ही कार्य कर रही है क्योंकि जड़ीभूत पुरातन का संहार अवश्यंभावी है। भविष्य में यह दृष्टि अधिकाधिक रचनात्मक बनेगी–नई सृष्टि के तपस्तेज का अग्निबीज बोनेवाली।' इसलिए वे कुछ विशिष्ट मानव जिन्हें यह भविष्यत् दृष्टि प्राप्त हुई है जीवन में किसी तकाज़े से या किसी भगवत्-अनुकम्पा से, वे उस दृष्टि को पाकर आत्मा के नये सत्य का न केवल साक्षात्कार करेंगे, उसे अपने में विकसित करेंगे या रचेंगे, वरन् अपने को कल्किमूर्ति में गढ़ेंगे। पर सिर्फ इतने सेही भावी-मानवों का समाज नही बन पायेगा। उनमें अपने साक्ष्य को जन-जन तक संप्रेषित करने, उसकी शक्ति को उन तक संचरित करने की क्षमता भी अर्जित करनी होगी :

To communicate both their idea and its **power** to the mass.

अब हम समझ सकते हैं कि हमारा दायित्व कितना बड़ा है, कितना गम्भीर और पहले के युगों से गुरुतर। क्योंकि समस्या सिर्फ विचार को संप्रेषित करने की नहीं है, बल्कि उसकी शक्ति को अबोध कुंठित जन तक पहुँचाने की है। किसी आश्रम जैसी संस्था में भावी मानव अपने को चिरकाल तक "साध" कर रख पायेगा यह भी संदिग्ध है। उसे उस कृपासंप्राप्त महाशक्ति को जनसमुदाय की भीड़ में ले जाना पड़ेगा, श्री अरविन्द की तरह, ताकि एक नया युग अवतरित हो सके, एक नया भविष्य खुल सके, और पृथ्वी पर एक नई सृष्टि साँसे भर सके। शायद

महाशक्ति भी तभी मिलती है, उसका साक्षात्कार भी तभी होता है जब ऐसा व्यक्ति अपने युग की जड़ताओं से टकराता है। कलियुग का यह चरण न केवल कलपुर्जों की जड़ताओं से जकड़ा हैं, बल्कि जनचेतना को आक्रान्त तथा विमर्दित करने वाले झूठ के महिषासुर के नारों और मायावी युक्तियों से भी विमूढ़ है। हम अपनी दृष्टि विकसित ही नहीं कर पाते । जनतंत्र भीड़तंत्र न बन जाए इसलिए वासुदेव का साक्षात्कार करना होगा और जनार्दन का वाहन बनना पड़ेगा भविष्य में। "उत्तरपाड़ा भाषा" में श्री अरविन्द ने वासुदेवं का ही उद्घोष किया था–वही इस राष्ट्र का नायक है। वासुदेव के इस नये व्यक्तित्व का साक्षात्कार क्या विराट जनसमुदाय (Mass) से अलग-थलग रहकर संभव है? और फिर, अब यह वासुदेव केवल भारत का ही नहीं समूचे विश्व का नायक है। विश्वनायक के रूप में वासुदेव का साक्षात्कार मानवभविष्यत् का सौभाग्य है।

प्रश्न यह उठता है कि इस विराट वसु और वसुन्धरा के बीच सेतु कौन है जो नव-युग को संभव बनाये। वह है एक धारक निकायः चाहे स्वयं जनसमुदाय हो, चाहे एक समाज (a society) या एक जातीय मन (communial mind)। जातीयमन से मतलब हिन्दू/मुसलमान से नहीं है बल्कि एक Commune से है। और यदि ये सब फिलहाल अधकचरी अवस्था में हों, तो, कम से कम, एक संघायतन के लोगों का (at the least, the constituents of a group-body) पूरी तरह से, पुष्ट रूप में तैयार होना तो जरूरी है ही। इसकी प्रामाणिक उपस्थिति के बिना भावी-मानव या नई-समाज रचना की चर्चा वाग्विलास ही होगा, जीवन्त अनुभव नहीं। यह समष्टिरचना भी ख़तरे से खाली नहीं है–एक़ तो यह कि शेष जनसमुद्र से कटकर वह साधन-सम्पन्न या विपन्न तटवर्ती बस्ती के समान बस जाना चाहेगी, दूसरे यह कि संघ का आयतन तो बन जाता है, उसकी आत्मा की जाग्रत शक्ति का अनुभव कम से कमतर होता जाता है। यदि शुरू में उसमें आत्मा की प्राणप्रतिष्ठा हो भी जाती है तो वह प्राण निरंतर विकसित होने की जगह पुरानी दुनियाँ की आदतों को दुहराने लगता है। समूह-आत्मा की अभीप्सा-अग्नि को नई सृष्टि तक पहुँचने के लिए अपने को अखण्डज्योति बनाये रखना पड़ेगा। आज इसी Group-Soul की संभावना को विकसित करना लाज़मी है ताकि मानव भविष्य की आध्यात्मिक सृष्टि सुरक्षित जन्म ले सके, विकलांग न बन जाये। निर्णायक परिवर्तन की सारी जिम्मेदारी इसी पर है। आज देवसंघ गढ़ना ही सबसे मुश्किल कार्य हो रहा है क्योंकि महाकाल इस समूह-आत्मा को आज के समूहमन का प्रतिपक्ष बनाकर खड़ा कर रहा है। इसमें

सचेतन सक्रिय योगदान चाहिए। तब, भविष्य में जिस नई सामाजिक शक्ति का उदय होगा वह व्यक्ति और समाज दोनों की समवेत् दिव्यता का धारक होगा। वह सही अर्थो में साम्यपरक होगा क्योंकि उसमें न तो व्यष्टिअहं का कर्कश स्वर होगा, न समष्टि-अहं का विकृत शंखनाद। आज हम यूरोप में भौतिक रूप से लाये गये साम्यवाद की परिणति देख रहे हैं। "आर्य" के संपादनकाल में ही, जब साम्यवाद सान पर चढ़ा भी न था तक कल्कि की तलवार की नोंक श्री अरविन्द की लेखनी की नोक में बैठकर भविष्यवाणी कर रही थी : The orgainsed state is neither the best mind of the nation nor is it even the sum of the communal energies. It leaves out of its organised action and suppresses or unduly depresses the working force and thinking mind of important minorities. often of those which represent that which is best in the present and that which is developing for the future ".....(The Inadequacy of the State Idea, the Ideal of Human Unity)

महत्वपूर्ण अल्पसंख्यकों में आध्यात्मिक विचारक भी हैं। अध्यात्म की शक्ति से ही सही साम्यवाद टिक सकता है। उसकी इस रचनाशक्ति की पहचान मध्यकाल में ही करीबदास को हो गई थी, जिन्होंने सामाजिक क्रांति के लिए आत्म साक्षात्कार को पहली शर्त माना। सर्वहारा कबीरदास की वाणी में जितनी गरज के साथ बोलता है उतना किसी मैनिफेस्टो में नहीं। इसका कारण है अंहकारहीनता। व्यक्ति के अहंकार को सार्वजनिक अहंकार के वशीभूत करके साम्यवाद नहीं लाया जा सकता। वह साम्यवाद बदतर होगा। श्री अरविन्द ने कहा भी था : It amounts to the giving up of the present form of individual egoism into another, a collective form, larger but not superior rather in many ways inferior to the best individual egoism. (वही : पृ० 26) समस्या तब और भी बढ़ जाती है जब अच्छे व्यष्टि अहंकार को निकृष्ट समष्टि-अहंकार में जबर्दस्ती विसर्जित कराया जाता है। साम्य का, गणराज्य के नाम पर उसकी इस जोरजबर्दस्ती का विस्फोटक अंत बीसवीं सदी के दूसरे दशक में ही श्री अरविन्द की दृष्टि के सामने खुले पृष्ठ की तरह उद्घाटित था। इसीलिए वे भविष्यवाणी कर सके : Therefore, just as the systems to social aggregation which depend on the domination of a class or classes over others must change or dissolve, so the social aggregates which stand in the way of this perfection of the individual

and seek to coerce him within their limited mould and into the rigidity of a narrow culture or petty class of national interest, must find their term and their day of change or destruction under irresistible impulsion of progressing Nature. (The Imperfection of Past aggregates: The Ideal of Human Unity.)

व्यक्ति और व्यक्ति के बीच एक बोधिसंपन्न सहजता का सहकार ही भविष्य का Commune होगा। श्री अरविन्द की धारणा हैं : It is even possible that our original state was an instinctive animal spontaneity to free and fluid association and that our final ideal state will be an enlightened, instinctive spontaneity of free and fluid association. Our destiny may be the conversion of an original animal association into a community of Gods.

सावधानी यह बरतनी होगी कि Community of Gods बनाते-बनाते कहीं हम प्रमादवश Original animal association में न लौट पड़ें। धरती पर देवों की इस जाति के सामाजिक रूप को अर्थतंत्र और धर्मतंत्र दोनों की जड़ताओं से मुक्त होना पड़ेगा। भविष्य केवल देवसंघों का है, धर्मसंघों या अर्थसंघों का नहीं। आत्मा के द्वारा जिये गये जीवन में ही स्वाधीनता, समता और भ्रातृभाव संभव है, किसी धर्म अथवा राजनीति के संप्रदाय के माध्यम से नहीं। मनुष्य का भविष्य यह माँग करता है कि उसे धर्म की जकड़न से भी मुक्ति मिले उसी तरह जैसे राज्य की जकड़न से। आज हम मानवता के धर्म की बात करते हैं, लेकिन यह सारी राजनैतिक और सामाजिक मशीनरी के बावजूद सफल नहीं हो पा रहा है । इसका कारण है मानवता के हृदय में निहित विश्वात्मा या दिव्यसत्य के साक्षात्कार की कमी। मानवता के माध्यम से जब विश्वात्मन् इस जगत में अभिव्यक्त होगा तब मानवधर्म का रहस्य भविष्य में खुलेगा : A religion of humanity means growing realization that there is a secret spirit, a divine Reality, in which we are all one, that humanity is its highest present vehicle on earth, that the human race and the human being are the means by which it will progressively reveal itself here. It implies a growing attempt to live out this knowledge and bring about a kingdom of this divine Spirit upon earth.

(The Ideal of Human Unity)

इस धरास्वर्ग के निरूपण के लिए कविता ही बेहतर माध्यम होगा। इसलिए "सावित्री"के मंत्रों में मानवभविष्यत् के 'सनातन दिवस' की धड़कन को सुनना आश्वस्त होना होगा :

Life's tops shall flame with the immortal's thoughts,
Light shall invade the darkness of its base.
A divine harmony shall be earth's law.
Beauty and Joy remould her way to live.
Even the body shall remember God.
Nature shall draw back from mortality
And Spirit's fires shall guide the earth's blind force.
The Supermind shall claim the World for Light,
And thrill with love of God the enamoured heart,
And place Light's crown on Nature's lifted head
And found Light's reign on her unshaking base.

(Book Eleven, Canto one : The Eternal Day : the Soul's choice and the Supreme Consummation).

●

IV

अखण्ड जीवन—आत्मा

श्री अरविन्द का नाम आधुनिक युग में एक अद्वितीय व्यक्तित्व की मूर्ति खड़ी कर देता है। कवि और राजनेता, मनीषी और वाग्वेत्ता, द्रष्टा और सृष्टा, आचार्य और प्रवक्ता और जीवन के हर पहलू पर प्रकाश डालने वाला अद्‌भुत भगवत्ता की मंगलमय मूर्ति। व्यक्तित्व की अविभाजित पूर्णता की भगवत्ता सिद्ध करने वाले, महर्लोक को भूलोक में स्थापित करने के व्रती श्री अरविन्द ने भारत की अखंड आत्मा का संधान जीवन के विविध पक्षों को समटते हुये, उसके अध्यात्म में किया। भारत का इतिहास : उसके अर्थ, काम, धर्म, और मोक्ष सभी स्तरों पर अध्यात्म की ही यात्रा का इतिहास रहा है। ये यात्रायें खण्डित होती रही हैं, किन्तु रुकी कभी नहीं। बाधित होती रही हैं, किन्तु खत्म कभी नहीं हुईं, और आधुनिक युग में जबकि विज्ञान तथा प्रविधि के जयनाद से भूमण्डल गूँज रहा है, साथ ही इस गूँज से दिमाग चकरा रहा है, जीवन डगमगा रहा है, चेतना लुप्त सी हो रही है, तब भारत की अनादि आत्मसत्ता को न केवल भारत में वरन् समस्त भूमण्डल के लिये प्रसाद रूप में लेकर श्री अरविन्द उपस्थित हुये। यह प्रसाद कोई संप्रदाय, किसी विशिष्ट इष्ट, किसी भाषा या वाद का पल्ला पकड़कर नहीं आया। इसकी न कोई मूर्ति है, न मन्दिर। समस्त भूचेतना के प्रांगण में अवतरित, अतिमानस का यह प्रसाद पराशक्ति के प्रकाश-लय-छंद से ऊर्जस्वित है, संचालित है जिसे हर कोई अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार ग्रहण कर सकता है। इस पराशक्ति की सिद्धि के लिये अपरा ही क्षेत्र है, अपरा ही पीठ है, तभी सनातनकाल से प्रवहमान योग पूर्णयोग बना है। श्री अरविन्द पूर्णयोग के संधाता और प्रस्तोता है। यह योग अध्यात्म को जीवन से पलायन, या विरेचन के रूप में इस्तेमाल नहीं करता बल्कि उस पराचेतना की संजीवनी ले आता है जो जीवन के हर पक्ष को रूपान्तरित कर डालती है उसकी ही आध्यात्मिक संगति में। यह संगति अतिमानस के सक्रिय सत्य में उन्हें मिली थी, जिसका द्वार उन्होंने सबके लिये खोल दिया था। सत्यचेतना ही अतिमानस है,

अतिमानस ही अखण्ड अविभाज्य चेतना है, इससे कम और कुछ भी नहीं । अब तक योग की जो भूमिकाएं रही हैं वें इसीलिये एकांगी हो होकर खण्डित होती रहीं कि पृथ्वी के वायु मण्डल में अतिमानस का पदक्षेप नहीं हुआ था। सारे पूर्ववर्ती योग मनस् की भूमिका से उतरे थे, चाहे वे अधिमानस तक भी पहुंचे हों। लेकिन् अधिमानस भी अखण्ड सत्य नहीं है, इसीलिये उसके द्वारा साधे गये योग भी पूर्ण या अखण्ड न रह सके। योग की पूर्ववर्ती परम्पराओं ने या तो मन को पकड़कर वेदान्ती अद्वैतता पकड़ी जिसमें सारा द्वैत स्वप्न और जड़ बन गया, या भाव को पकड़कर वैष्णव एकान्तता पकड़ी जिसमें वृन्दावन सारे संसार से न्यारा, अलग थलग जा पड़ा। या यदि ऊच्चतर प्राण या निम्न देह प्राण को पकड़कर इनका तंत्र भी इस्तेमाल किया तो उससे अद्वय भूमिका छूट गई, अथवा तंत्र के हाथों रो अध्यात्म की रास छूट गई। मन, प्राण, देह अपनी ही सूक्ष्म शक्तियों का सन्धान करते रहे, अपने पीछे की अद्वय अविभक्त सत्ता को पकड़ने की कोशिश इन्होंने नहीं की। आत्मा की सही पकड़ छूट जाने से जीवन टूटता रहा, या देह-मन-प्राण जीवन से उलझते-पुलकते रहे। जीवन इन तीनों का संघात है, और यदि भागवत सारथी इन तीनों की रास एक साथ नहीं थामता तो इनकी सिद्धि संभव नहीं। इनके पीछे स्थित चैत्यपुरुष ही वह योगारूढ़ एकता है जो व्यक्ति के विभाजित व्यक्तित्व को संपूर्णता और भगवत्ता देती है और इन तीनों को सच्चिदानंद से संचालित करता अतिमानस ही वह महाचेतना है (महर्लोक) जो समष्टि की अखण्डता का प्रवर्त्तक और उद्गाता है। श्री अरविन्द इसी महर्लोक के ऋषि कवि थे। उनका "सावित्री" महाकाव्य इसी लोक के भूलोक में संचरण और भूलोक के रुपान्तर की अमर कथा है। यह महाकाव्य एक साथ ही प्रतीक और पुराख्यान है : जहाँ सत्यवान विश्व की आत्मा है कालकवलित, अंधकारग्रसित होती हुई, सावित्री पराशक्ति है, अश्वपति जीवन के स्वामी मनुष्य की तपः शक्ति है और द्युमत्सेन अंधी बनी मनुष्य की दिव्यदृष्टि। यह रूपकात्मक गाथा जीवन के अंधकार, अज्ञान, नश्वरता (यम जिसका प्रतीक है) के कवल से जगत की सत्य-आत्मा का पराशक्ति के द्वारा निस्तार की कथा है और जगत में ही, पराभूत यम के स्थान में ही अमर आत्मा की अमरदेह में चित्तशक्ति सहित अखण्ड स्थापना है, अद्वय-द्वय में, अनेकता में एकता के बीच। इस एकता और अखण्डता के लिये ही पराशक्ति की आवश्यकता है। सावित्री के सर्ग 2 में इसका भाव इस प्रकार वर्णित है :- "कहाँ है सकल का सुनहरा शिखर..... प्रकाश का पर्दा उठाकर राज महाराज के पिंड के दर्शन किसने किये हैं? प्रभु के जन्म की और कर्म

की रहस्यमयता शेष रह गयी है। अधूरे लीला नाटक की समस्या हल नहीं हुयी है। देखो, विश्व का नटवर छद्म वेश में हँस रहा है। मानव मूर्ति के और नाम की महिमा के पीछे अन्तिम गुह्य गुप्त रहा है।.... प्रभु के अंधकार के और इसकी नग्नज्योति के अंदर होकर विकीर्ण हुयी कोटिक किरणें जहाँ से आयी थीं उसी सरिता में प्रवेश करने के लिए पीछे फिर गई थीं। ..... (माँ भगवती की अराधना: सावित्री सार संहिता, पृ०-139) उसी के प्रगट होने पर, भगवती चित्तशक्ति की सुसंवादिता आ जाने पर सारे विरोधों का शमन होकर जीवन ऊर्ध्व अधः के द्वन्द्व से मुक्त होगा, ऊपर नीचे एक होगा, अखण्ड अविभाज्य होगा। "एकदिन यहाँ सब ही इसके माधुर्य का मंगल मन्दिर बनेगा, यहाँ के विरोधी तत्व भगवती की सुरीली संवादिता से सज्ज होंगे। माँ भगवती की चेतना में रूपान्तर पाकर हमारा जीवन ऊर्ध्व में निःसीम नीरव निःश्रेयसों का और निम्न में इसके आश्चर्यकारी आश्लेष का अनुभव करेगा।" (वही, पृ 141) इसी शक्ति की तलाश में सावित्री अनेक अंतर्द्वार पार करती चली जाती है। करुणामयी अन्नपूर्णा, ओजमयी दुर्गा, प्रकाशमयी प्रज्ञा सबको वह एकांगी पाती है। वह ब्रह्मा ब्रह्माणी, शिवशक्ति राधाकृष्ण सबसे अपनी तदाकारिता अनुभव करती हुयी इन्हें भी छोड़कर आगे निकल जाती है। क्योंकि वह अजातशक्ति की खोज में है: वह शक्ति जो पृथ्वी के जीवन का रूपान्तर करके इसकी खण्डित चेतना में अखण्ड भागवतचेतना संचरित कर सके। इसीलिये वह कहीं रुकती नहीं। श्री अरविन्द ने अधिमानस का लोक भी पार करना इसीलिये उचित समझा क्योंकि सम्पूर्ण अखण्डता का संधान उन्हें अतिमानस में मिला। सावित्री इसी अतिमानसी शक्ति के उत्स तक पहुँचना चाहती है, इसलिये अबतक की सारी अध्यात्मासिद्धियों को पीछे छोड़ जाती है। श्री अरविन्द के शब्दों में :–

A sealed identity within her woke:

She knew herself the Beloved of the Supreme :

These Gods and Goddesses were he and she:

The Mother was she of Beauty and delight,

The Word in Brahma's Vast creating clasp,

The world-Puissance on almighty Shiva's lap,

The Master and Mother fo all lives,

Watching the worlds their twin regard had made,

And Krishna and Radha for ever entwined in bliss,

The Adorer and Adored self-lost and one.

In the last chamber on a Golden seat

One sat whose shape no vision could define,

Only one felt the world's unattainable fount,

A Power of which she was straying Force,

... .

Then with a magic transformation's speed

They rushed into each other and grew one.

(The Finding of the Soul)

इस सवितृ शक्ति से एकाकार होना ही संसार के सत्य का अंतिम रहस्य पा लेना है, नानात्व में छिपे भगवान के अखण्ड स्वरूप को न सिर्फ देखना है बल्कि जीना है। यह तभी संभव है जब अंखण्ड सत्य लोक, जिसे श्री अरविन्द ने अतिमानस कहा है, भूतल पर सक्रिय हो। महाकाव्य के अंत में, "पार्थिव वास्तविकता की स्वप्नमयी संध्या" में इसी अतिमानस का आख्यान है। "अतिमानस विज्ञान का जगत नित्यज्योति का जगत है। वहाँ का शरीर ब्रह्मतत्व का बना होता है, वहाँकर्म द्वारा चैत्य आत्मा अविष्कार पाती है, विचार अचूक और अनपेक्ष होता है और जीवन एक अखंड आराधना बनकर एकस्वरूप के होने वाले महायज्ञ की महामुद्रा का रूप लेता है। सान्त स्वरूप में वहाँ अनन्त का मुखदर्शन होता है। एक आत्मा अनेक रूपों में विलसती अनुभव होती है। एक अनन्त पुरुष असंख्येय व्यक्तिस्वरूपों में अभिव्यक्ति पाता है। ..... प्रत्येक सत्व वहाँ आत्मा का ही एक अंग है, एकता के ऊपर इसका अक्सर दावा होता है, बहुस्वरूप का माधुर्य और अनेकता का आनन्द एकस्वरूप के साथ अन्तरंगता के कारण वहाँ फुर्तीले बन गये होते हैं।..... (सावित्रीसार संहिता, पृ० 349) इसी अतिमानसी शक्ति के साथ अमर प्रेम का आलोक उतर आता है, एक महत्तर राग संवाद जन्मता है, विशाल वसुन्धरा पर अनन्त आनंदमयता अपनी ऊष्मापूर्ण पाँखों को फैलाती है । "पृथ्वी पर

पुनरागमन'' से ही यह विश्व-योग समाप्त होता है, सावित्री– सत्यवान का युगल रूप नयी भगवत्ता विकीर्ण करता है, एक नये युग का आरम्भ करता है। पृथ्वी लोक और स्वर्ग लोक का महाश्चर्य सावित्री में मूर्तिमन्त बन जाता है । उसको देखकर मुनिवर बोले : ''अहो अद्भुतस्वरुपिणी सीमन्तिनी ! हमारे लिये कौन सा अलौकिक प्रकाश लायी है ? तू किस महाशक्ति का अपने में दर्शन कराती है? तूने तो हमारे लिये एक नये युग का आरम्भ कर दिया है।'' (वही, पृ० 377-78) इसके उत्तर में सावित्री जो कहती है वह श्री अरविन्द की ही वाणी है :–

"Awakened to the meaning of my heart,

That to feel love and oneness is to live

And this magic of our golden change

Is all the truth I know or seek, O sage "

(Epilogue, p. 724)

पार्थिव जीवन में घटित होती हुई यह भागवतलीला केवल रूपक-कथा नहीं, मात्र प्रतीक नहीं है। श्री अरविन्द ने इसके विषय में स्पष्ट ही कहा है :–

The tale of Satyavan and Savitri is recited in the mahabharata as a story of conjugal love conquering death. But this legend is, as shown by the many features of the human tale, one of the many symbolic myths of the Vedic cycle.

Satyavan is the soul carryinbg the divine birth of being within itself but descended into the grip of death and ignorance: Savitri is the divine Word, daughter of the Sun, goddess of the supreme Truth who comes down, is born to save: Aswapati, the Lord of the Horse, her human father, is the Lord of Tapasya, the concentrated energy of spiritual endeavour that helps us to rise from the mortal to the immoratal planes :

Dyumatsena, Lord of the Shinning Host, father of satyavan, is the divine Mind here fallen blind, losing its celestial kingdom of glory. Still this is not a mere allegory, the characters are not personified qualities, but carnations or emanations of living and conscious Forces with whom we can enter into concrete touch and they take human

bodies in order to help man and show him the way from his mortal state to divine consciousness and immortal life "

सारे पात्र केवल प्रतीक नहीं हैं, एक रूपक-कथा के अंग नहीं। वे विशेष-विशेष गुणों के मानवीकरण नहीं हैं बल्कि जीवित और सचेतन शक्तियों के विग्रह या कायव्यूह हैं जिनके साथ हमारा जीवन्त संपर्क हो सकता है । और वे मानवशरीर धारण करते हैं जिससे कि वे मनुष्य की सहायता कर सकें, उसे उसकी मर्त्य अवस्था से निकलने तथा एक दिव्यचेतना और अमर जीवन में प्रवेश करने का रास्ता दिखा सकें।

संदर्भ : सावित्री सार संहिता – लेखक श्रीपूजालाल, अनु० सरला शर्मा प्रका० पूजालाल, श्री अरविन्द आश्रम पांडिचेरी, 1978

सावित्री : श्रीअरविन्द, प्रकाशक श्री अरविन्द आश्रम । 1972

●

V

भारतीय संस्कृति की पुनर्सर्जना

आज संचार-माध्यमों, यातायात की सुविधाओं और विराट औद्योगीकरण से जब संसार के सिमट कर एक हो जाने के नारे समाज लगा रहा है तो आधुनिकता के इस शोर में भारतीय संस्कृति क्या मायने रखती है? आधुनिक होने का अर्थ पश्चिमी मानसिकता और अदम्य प्राणिकता को प्रमाण मानना है। तर्कसम्मत वैज्ञानिक बुद्धि ने हमें उपयोगितामूलक संस्कृति दी है, उसमें उपभोगूमलक (consumeristic) प्राणिक लालसायें जुड़ गई हैं। इस उपभोक्ता संस्कृति के वरदान के आगे हमें भारतीय संस्कृति क्या कुछ दे सकती है? क्या इस संस्कृति के पुनर्सर्जन का रूप मानवजाति के सांस्कृतिक भविष्य में कुछ क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकता है, जैसा कि वैज्ञानिक संस्कृति आधुनिक काल में ले आई?

प्रश्न है वैज्ञानिक संस्कृति के वरदानों की तुलना में उसके अभिशाप क्या-क्या हैं? प्रकृति का विखंडन (Ecological destruction) क्या इसी संस्कृति की देन नहीं है, कि पृथ्वी का यह ग्रह ही अस्तित्व के खतरे में है? प्रश्न है कि प्रकृति के प्रति विज्ञान की जो दृष्टि रही है क्या वही अंतिम दृष्टि है? क्या उसका विजेता होने का गर्व स्वयं वैज्ञानिक मनुष्य के अस्तित्व का संकट नहीं बन गया? और क्या निरन्तर उपभोगमूलक श्रृंखला में कसकर हम अपने को काल-तत्व से बचा सकेंगे? क्या हम देश और काल दोनों से पराजित नहीं हो चुके हैं? तब हम क्यों वैज्ञानिक तकनीकी संस्कृति के मोह से इनके जकड़े हैं कि हमारा आचार ही नहीं विचार और मन भी उन्हीं संस्कारों से भ्रष्ट और दिशा-हीन हो चुका है जिनका कोई समाधान पश्चिम के पास नहीं है।

क्या भारतीय संस्कृति की ओर नई सृजनात्मकता के लिये देखना जरूरी है? श्री अरविन्द का कहना है : हाँ,ज़रुरी ही नहीं अवश्यंभावी है।भविष्य में भारत की सांस्कृतिक दृष्टि ही विश्व को एक नया संस्कार दे सकती है। यूरोप के भौतिक

बौद्धिकतावाद के सामने एशिया के आध्यात्मिक इहतावाद को वरीयता इसलिये नहीं मिल पाती कि हम स्वयं अपना स्वभाव और स्वधर्म छोड़कर दूसरों की नकल को परम पुरुषार्थ समझते रहे हैं। हम एक ऐसी तथाकथित भारतीय पीढ़ी को गढ़ चुके हैं, जो पश्चिमी तरीके के पोशाक-पहनावे, खानपान के साथ-साथ उसी तर्ज़ में बोलना-बतियाना, संबोधित करना सीख चुकी है। आज के महानगरों का किशोर और युवा हमारे ही द्वारा तैयार की गई स्वतंत्रता के बाद की पहली पीढ़ी है, जिसे भारतीय संस्कृति के बारे में शायद अता-पता ही नहीं सिवाय (Festival of India) भारत-उत्सव के। आधुनिक भारत में भारतीय नवजागरण स्वतंत्रता के बाद जैसे रेत में खो गया। इसके विरुद्ध श्री अरविन्द ने (A defence of Indian culture में) आवाज़ उठाई थी और कहा कि एक विश्व की बात केवल सन्यासी ही कर सकता है जिसने विश्वात्मा का साक्षात्कार किया है। विश्व के एकीकरण का अर्थ पश्चिमीकरण नहीं है। उसका अर्थ पूर्वीकरण भी हो सकता है और पूर्व का प्राण है भारत!

भारत में ऐसा क्या है जिसे सांस्कृतिक रूप में अब तक, बावजूद सारे पतन के, धरोहर के रूप में संजोये रखा गया है? श्री अरविन्द का कहना है उसकी आध्यात्मिक आधारशिला। इसी आधारशिला पर व्यापक नवनिर्माण की प्रेरणाओं से भारतीय संस्कृति की पुनर्सर्जना हो सकती है। यही भारतीय संस्कृति के समाज-दर्शन, राजनीति, कला साहित्य और धर्म-दर्शन सबके मूल में पनपती रही, तथा लोक जीवन को विराट अर्थ प्रदान करने की कोशिश बनी रही। इसी ने इस संस्कृति को मरने नहीं दिया। यह बुद्धि के अंधकार, मनप्राण के प्रमाद और देहकी जड़ताओं में आत्मा की चिनगारी फूँककर एक नये प्रकार का संस्कार मनुष्य में उकसाती रही। उपभोगमूलक आधुनिक संस्कृति बर्बरता या पशुता के किस गढ्ढे में धँसती जा रही है, यह छिपा नहीं है। इस उपभोक्ता संस्कृति का प्रत्युत्तर भारतीय संस्कृति का नवोन्मेष ही है, जहाँ संयम फ्रायड का दमन नहीं, मनुष्य की चेतना के उन्नयन की प्रक्रिया है। आज जब अर्थ तंत्र में साम्यवाद ढह चुका है, तो कल काम तंत्र में फ्रायडवाद नहीं चरमरा जायेगा, यह कौन कह सकता है? वह अभी ही अपनी भयंकर परिणतियाँ देख रहा है। तृष्णाओं का अन्त नहीं है। जिस संयम/तपस् की हम खिल्ली उड़ाने लग गये हैं, उस पर आधारित संस्कृति मानवीय प्रकृति के उच्चतर महाप्रस्थान का रास्ता खोलती है। इसके तहत श्री अरविन्द कृच्छ्रता (asceticism) के महत्व को भी स्वीकारते है।

There can be no great and complete culture without some element of asceticism in it, for asceticism means the self denial and self conquest by which man represses his lower impulses and rises to greater heights of his nature. (Foundations of Indian culture)

मानवीय प्रकृति का चेतनागत उच्चता में उठना ही भारतीय संस्कृति का युगानुरूप पुनर्सर्जन होगा। इस प्रकार उन्नीत व्यक्ति और समाज ही बाहरी प्रकृति में देवता का दर्शन कर सकता है। तब वह प्राकृतिक परिवेश को नष्ट करने की जगह उसके तादात्य से अपनी प्रकृति की उच्चता हासिल करेगा, जैसा कि वैदिक समाज ने किया था। पुरुषोत्तम नरदेह में ही नहीं अश्वत्थ में भी प्रकट है– यह दृष्टि भारतीय संस्कृति के पास रही है। आधुनिक संस्कृति के पर्यावरण संकट में भारतीय संस्कृतिक दृष्टि को आक्रामक होकर भी अपनी इयत्ता स्थापित करनी होगी। श्री अरविन्द की मान्यता है भारतीय संस्कृति का, विश्वकल्याण के लिये, यह आक्रा मक भाव ज़रूरी है। वे पूछते है : Whether the future hope of the race lies in a rational and an intelligently mechanised or in a Spiritual, intuitive and religious civilisation and culture, that then is the importtant isue. (वही पृ० 17)

'आर्य' के सम्पादन काल में ही वे समझ चुके थे : Either India will be rationalised and industrialized out of all recognition and she will be no longer India, or else she will be the leader in a new world-phase, aid by her example and cultural infiltration the new tendencies of the west and spiritualise the human race. (वही पृ० 15)

सारा विश्व-अनुभव पचाते हुए भारतीय आध्यात्मिकता अपनी संस्कृतिक पुनर्सर्जना में एक नवीनतर, विशालतर रूप और वृहत्तर परिवेश लेकर भविष्य में प्रकट हो सकती है। एक नयी चेतना जिसे श्री अरविन्द अतिमानस कहते हैं वह बुद्धि और विज्ञानाश्रित मनुष्य की सभ्यता से कहीं गहरी संस्कृति को जन्म देगी, क्योंकि अतिमानस मध्यकालीन धर्म की तरह बैंकुंठवासी या परलोकवासी नहीं है। वह धरती के जीवन को ही रूपान्तरित करेगा और मनुष्य को देवजन्म के आह्लाद से भर देगा। उससे हमारी प्राणिकता, बौद्धिकता और दैहिकता का क्षय नहीं, समूल रुपान्तर होगा। इतनी प्रबल पुनर्सर्जना के लिये भारतीय संस्कृति को जननी संस्कृति

की पीड़ा से गुज़रना होगा। भौतिक, सामाजिक, बौद्धिक आध्यात्मिक सारे स्तरों पर अपने को फिर से परिभाषित करना होगा। हम समाजवाद के पश्चिमी रूप को अपना मूलाधार नहीं बना सकते। इसे हम अपने अनुभव और संचित ज्ञान राशि का अंग बनाकर इसका उपयोग कर सकते हैं, पर अपने स्वधर्म के अनुसार। इसके लिये हमें अपने इतिहास को छानना पड़ेगा, कि हमारे समाज में समता या गणराज्य की क्या अवधारणायें थीं और समत्वमूलक सामाजिक संरचना में राजनीतिक सत्ता की क्या भूमिका हो? डॉ० शिव प्रसाद सिंह ने "लोकतंत्र और अभिव्यक्ति का संकट" (इलाहाबाद में हिन्दुस्तानी एकेडेमी में "कवि दिवस" पर पढ़ा गया लेख 6.8.90) में कहा: भगवान बुद्ध के समय में लिच्छवि गणतंत्र को विनष्ट करने वाले साम्राज्यवादी अजातशत्रु के हथकण्डों से हमें परिचित होना चाहिए। उनका अमात्य वर्षाकार ब्राह्मण परम कूटनीतिज्ञ था। लिच्छवि गणतंत्र के विनाश के कारण पूछने पर बुद्ध ने वर्षाकार से नहीं अपने प्रिय शिष्य आनन्द से कहा था– "आनन्द क्या लिच्छवि गणतंत्र के लोग मिल बैठकर सबकी बातें सुनकर सर्वसम्मति निर्णय करते हैं? क्या वे सन्निपात बहुल हैं अर्थात नियमित एकत्र होकर सोचते हैं? क्या एकमत करणीय करते हैं? क्या वे अपनी कुल वधुओं और कुमारियों को बलपूर्वक तो नहीं छीनते? क्या वे वृद्धों का सत्कार करते हैं?" आनंद से सात शर्तें बताकर भगवान बुद्ध ने कहा "वैशाली में जबतक यह होता रहेगा, उसका पतन नहीं हो सकता"। साथ में और शर्तें भी जोड़ी जा सकती हैं जो आज के विषमताग्रस्त भारतीय समाज में व्यक्ति और समाज के सम्मान की रक्षा कर सकें।

लोकतंत्र में धन संचय और शक्ति संचय की जगह हम अगर आत्म शक्ति के संचय को वरीयता दें तो राजनीति और समाज अर्थात् अर्थतंत्र का नक्शा कुछ और ही होगा। आश्चर्य है कि स्वतंत्रता के पहले राजनेताओं ने भारतमाता को देवी रूप में पूजा और अनेक समाजिक शक्तियाँ एकजुट होकर महाशक्ति की आराधना में लग गयी थीं। आज भौतिक लेंस से जब हम इस देश को देखते हैं, तो माता के रूप में नहीं "जनतंत्र" या "कल्याणकारी राज्य" के रूप में ही देख पाते हैं। आखिर ये "जन" क्या हैं जिनका रूप भारतमाता नहीं हम गढ़ रहे हैं? हमारी राजनीति, स्वतंत्रता के पहले, हमारे सांस्कृतिक पुनरुत्थान की संतति थी, उसकी जननी नहीं। आज हम पश्चिमी प्रभाव में उल्टी धार बहा रहे हैं। संस्कृति की सर्जना छोड़कर राजनीति में जनकल्याण का भोंपू बजा रहे हैं, इसलिए राजनीति अपनी विश्वसनीयता खोती जा रही है। देश के भूगोल को श्री अरविन्द ने एक जीवन्त

शक्ति के रूप में महसूस किया था, जिसे अपनी पत्नी मृणालिनी को लिखे गये पत्र में व्यक्त किया। चित्तरंजनदासने श्री अरविन्द को राष्ट्रीयतावाद का पैगम्बर कहा था। इस पैगम्बर की वाणी में कितनों को विश्वास है? हम गोर्वाचोव को पैगम्बर सिद्ध करने में लगे रहे हैं। हमारी स्मृति से अपने राजनैतिक पैगम्बर मिटते जा रहे है: गाँधी भूले जा चुके है, श्री अरविन्द भी। विराट औद्योगीकरण द्वारा उपस्थित पर्यावरण संकट में आज गाँधी के लघुउद्योग या अधिक से अधिक मध्यम उद्योग पर सोचने को हम मजबूर हैं। उसी तरह साम्यवाद की ध्वस्तता श्री अरविन्द के राजनैतिक विचारों की तह तक पहुँचने को बाध्य करेगी भविष्य में। हम स्वाधीनता चाहते हैं, समत्व चाहते हैं। पर क्या यह अत्मा के अनुभव के बिना टिकाऊ हो सकता है? जबतक राजा जनक नहीं होंगे वैदेही नहीं होंगी। और जब तक वैदेही नहीं होंगी तबत्क रावणराज्य की उपभोक्ता संस्कृति में नई शुरुआत भी नहीं होगी। यह संस्कृति तो ध्वस्त होने के लिये मजबूर है। हम क्यों न वैदेही की प्रतिष्ठा करके रामराज्य की अभीप्सा करें। अध्यात्म का अर्थ राजनीति की बर्खास्तगी नहीं बल्कि श्री अरविन्द की तरह एक आध्यात्मिक आग को लेकर राजनीति में प्रवेश करना है। हममें से कितने हैं, जो ऐसे पात्र बन सकते हैं, कितने हैं जो इस धारणा से प्रभावित भी हो सकते हैं? श्री अरविन्द ने किसी समय "भवनी मंदिर" की स्थापना करनी चाही थी, उसका एक दस्तावेज भी प्रस्तुत किया था। दुर्भाग्यवश वह स्वप्न तत्कालीन राजनीति की दमनकारी शक्तियों के कारण पूरा न हो सका। अब जब भारत स्वतंत्र है तब हम वर्ग, वर्ण, धर्म के उन्माद से रहित भारत भवानी की अराधना पर क्यों नहीं लौट सकते? चाहिए इसके लिये युवाओं का एक समृद्ध व्यक्तित्वसंपन्न संघ, जो इसे चरितार्थ कर सके। भवानी मन्दिर की कल्पना ही यही थी। श्री अरविन्द उसके अन्तर्गत कर्मरत ब्रह्मचारियों का एक संघ बनाना चाहते थे। उन्होंने कहा "हम ऐसे व्यक्तियों का एक केन्द्र चाहते हैं, जिनके भीतर की शक्ति पूर्णतः विकसित हो चुकी हो, जिनके भीतर व्यक्तित्व का प्रत्येक अणु इससे प्रभावित हो और इस तरह उच्छलित होती हो कि ज़मीन को उपजाऊ बना सके। ये लोग भवानी की अग्नि शिखा को अपने दिल और दिमाग़ में लिये देश के कोने-कोने में ज्योति फैलाने का कार्य करेंगे"। स्वयं श्री अरविन्द ने इस कार्य का नेतृत्व किया। क्या आज हम ऐसे तेजस्वी नेतृत्व की आशा छोड़ दें? यदि ऐसा हुआ तो देश राजनीतिक और सामाजिक रूप से मर जायेगा। इस संदर्भ में मैं "गरम पंथ" (Nationalist Movement) के बारे में श्री अरविन्द का लम्बा उद्धरण देना चाहूँगी : Yet it will remain as a finger post on the roads. The attempt is

bound to be renewed as soon as a wider gate is opened under more favourable conditions. Till that attempt comes and succeeds a serious danger besets the soul of India; for a political Europeanisation would be followed by a social turn of the same kind and bring a cultural and spiritual death in its train. Aggression must be successful and creative if the defence is to be effective. (वही, पृ० 12)

इस गरमपंथ के मूल में था "भवानी मंदिर" का भाव।

संस्कृति के नवसृजन की सबसे बड़ी पीठ है शिक्षा। आज सांस्कृतिक दृष्टि से इसका महत्व सबसे कम हो चुका है। यह डिग्री खरीदने का साधन और आजीविका की दासी है। इसलिए पश्चिमी डिग्री प्रणाली ज़रुरी है। ऋषियों द्वारा जिस शिक्षा की पवित्रता का संरक्षण आश्रमों में होता था, वह शिक्षा अब बिकाऊ है। ऋषि मनुष्य को द्विज अर्थात आत्मा का जन्म देकर दुबारा-जन्मा करता था। उन सारे संस्कारों को खोकर हम पश्चिमी संस्कार से इतने कलुषित हो चुके हैं कि ब्रह्मचर्य आश्रम का मज़ाक उड़ाने लगे हैं। ब्रह्मवर्चस् ही जब समाज में नहीं पैदा हो सका तो सही शासन, सही व्यापार, सही शिल्प का चरित्र कहाँ से पैदा होगा? लोकतंत्र में सबको शिक्षा तो देना ठीक है, पर किस तरह की शिक्षा? शक्तिपीठ को गढ़ने के लिये शक्ति के सात्विक भाव को जगाना ज़रुरी है। विविध आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को समाहित करते हुये उन्हें अपनी दृष्टि से रूपाकार देते हुये हम क्यों नहीं स्वधर्म सम्मत एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली विकसित कर सकते, जिसका आदर्श ऋषिकुल हो और उसके भीतर चरित्र तथा व्यक्तित्व का निर्माण ? क्या आश्रमों में विद्याअर्जन के लिए गये व्यक्ति बेरोज़गार साबित होते थे? हम बेरोजगार की दुहाई देते-देते शिक्षा देना ही भूलते जा रहे हैं। कुशिक्षित या आधुनिक शिक्षित लोगों की संस्कृति हम देख ही रहे है। ऋषियों की महान आर्य शिक्षा की शुरूआत फिर से युगधर्म के अनुरूप की जा सकती है जिसमें शूद्र और स्त्री दोनों का अधिकार होगा। ऐसी शिक्षा ही समाज को नया संस्कार देगी, मात्र वैज्ञानिक शिक्षा नहीं जो मनुष्य का मानसिक संस्कार तो करती है, पर प्राणिकता और दैहिकता को इतना भोगपरक बना देती है कि आत्मा के संस्कार की बात ही नहीं उठती। आखिर चरित्र कहते किसे हैं? केवल बौद्धिक पैनेपन को? यदि हमने श्री अरविन्द के (National College में) प्रिंसिपल के पद से दिये गये भाषण की तरह विद्यार्थियों से यह कहा होता कि तुम धनी बनो तो देश के लिये, उच्च पदासीन होओ तो देश के लिये, कीर्ति हासिल

करो तो देश को ऊँचा उठाने के लिये ..... तो देश फिर से "सोने की चिड़िया" बन जाता। हम शिक्षा के अतिरिक्त और किसी तरह से सामाजिक क्रांति नहीं ला सकते। निर्माण काल में ही जब संस्कार भ्रष्ट हो गये तो व्यक्ति आगे क्या क्रांति करेगा? पश्चिमी ढ़ंग की क्रांति की बातें करते रहिये और पश्चिम में या चीन (पूर्व) में उनकी परिणतियाँ देखते रहिये। स्वभाव/संस्कार आंतरिक क्रांति की अपेक्षा करता है। और इसके लिये चाहिए समाज में एक ऐसी आंतरिक शक्ति, एक ऐसी चरित्रिक क्रांति की शुरुआत जिस पर अभी सबको अविश्वास है, पर जिसके बिना नई संस्कृति गढ़ना असंभव है। जब गाँधी जी ने अध्यात्म को राजनीति से जोड़ा था तब सबको उसकी असफलता पर विश्वास था, पर वह इतिहास में चरितार्थ हुआ– इसकी गवाह बीसवीं शताब्दी है। आज जब हम सामाजिक क्रांति के लिये देश में आध्यात्मिक क्रांति की बात करते हैं तो सबको अविश्वास होता है। पर जगह-जगह स्फुट आध्यात्मिक कम्यून या समाज यदि इस तरह की क्रांति के केन्द्र साबित हो सकें तो भारत में जल्दी ही आध्यात्मिक सामाजिकता का दौर शुरू किया जा सकेगा। प्रचार नहीं, आचरण ही ऐसे केन्द्रों की प्रामाणिकता है। इस दिशा में भी श्री अरविन्द के अनुयायिओं की भूमिका सर्वोपरि होनी चाहिये, क्योंकि श्री अरविन्द ने ही दिव्यता को जीवन से जोड़ते हुए Life divine का प्रतिपादन किया और All life is yoga का महावाक्य कहा।

संस्कृति की सशक्त अभिव्यक्ति प्रायः साहित्य और कला में होती है। एक कवि ऋषि जो सोचता है समूची जाति सोचने लग जाती है। हमारा भारत व्यास और बाल्मीकि से बना था, बजाय शास्त्रों से। शास्त्र लचीले नहीं होते, मनुष्य के व्यक्तित्व और समाज की जिन सम्भावनाओं को वे अनदेखा कर जाते हैं उन्हें काव्य/साहित्य/कला उजागर करते हैं और जीवन की पुनर्रचना करते हैं। भारत का कवि ऋषि ही हुआ करता था– व्यास बाल्मीकि ही नहीं, सूर तुलसी, कबीर भी मध्ययुग के भावुक ऋषि थे। मध्य काल की समूची उत्तर- भारतीय संस्कृति को गढ़ा था तुलसी, व कबीर, सूर या जायसी ने, बल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य, रामानुजाचार्य, आदि के वेदान्त-भाष्यों ने नहीं। आज भारतीय भाषाओं में नया "संस्कृति समय" देने वाले कवि नहीं दीखते, क्योंकि हम सार्त्र, कामू, काफ्का का नाम जपते हुए यह भूल गये कि कविता मंत्र होती है, कि मंत्र मरे हुए को भी नया जीवनदान दे सकता है। यदि हमारी संस्कृति मुमूर्ष हो रही है तो मांत्रिक कविता से ही इसे जीवित किया जा सकता है, लोकतंत्र, जनतंत्र के नारे से नहीं। हमें अपनी संस्कृति की पुनर्सर्जना के लिये चाहिये महाभारत, रामायण, पदावली जैसे ही सशक्त काव्य। हमें मंत्र-

कविता चाहिए, पोस्टर-कविता नहीं। इस मंत्र कविता की विस्तार से चर्चा की श्री अरविन्द ने "भावी कविता" (The future poetry) में। यदि कविता की यह भवितव्यता अभीतक ओझल है तो यह हमारी ही अक्षमता है, अपात्रता है साहित्य में, भावी कविता की नहीं। स्वयं श्री अरविन्द ने अंग्रेजी भाषा में "सावित्री" लिख कर सारी मानव जाति को एक ऐसी महाकाव्यात्मक यात्रा के लिये तैयार कर दिया है जिसकी शक्ति और ऊर्जा के आगे अबतक की सारी साहित्यिक उपलब्धियाँ अंधेरे में जुगनू की तरह दिखायी देनी लगीं, अधिक से अधिक दीपक की तरह। इस भास्वर पंचसूर्या "सावित्री" को पढ़ना सौंदर्य और आनन्द ही पाना नहीं, बल्कि सत्यों का सत्य देखना, जीवन के वृहत्तर प्राण का उन्मोचन है। "सावित्री" को पढ़ना जीवन को एकसाथ आध्यात्मिक प्रतीक में परिणत करते जाना और उसे एक तरह से Legend में रूपान्तरित करते जाना है। सावित्री की कथा (Legend) और परिकल्पना के मूल में एक तरह से भारतीय संस्कार ही हैं चाहे अश्वपति (मानव का पुरोधा) की आरोहण यात्रा हो या सावित्री सत्यवान का दांपत्य। उसमें आज की तथाकथित प्रगति का गुणगान नहीं। वहाँ कथ्य (Content) चेतना का ही प्रयास है। सारे मानवीय संबंध एक आध्यात्मिक प्रतीक से आलोकित हो जिस नई सृष्टि को रचने में उद्ग्रीव होते हैं वे भारतीय स्वभाव को समझने की मांग करते हैं। सारा मानव भविष्य जैसे इस महाकाव्य में अवतरित है। यह पश्चिम की नहीं, एशिया की औरसबसे बढ़कर भारत की आगामी महायात्रा का जीवंत दस्तावेज है जो सारी मानव जाति के पढ़ने के लिए खुला है।

All now is changed, yet all is still the same. Lo, we have borne identity with the supreme./ And known his meaning in our mortal lives. / Ourlove has grown greater by that mighty touch / And learnt its heavenly significance. / Yet nothing is lost of mortal love's delight.

Heaven's touch fulfils but cancels not our earth :
Let us go through this new world that is the same.
For it is given back, but is known.
A playing ground and dwelling-house of God.
Who hides himself in bird and beast and man.
Sweetly to find himself again by love,
By oneness. His presence leads the rythms of life.
That seek for mutual joy inspite of pain.

SAVITRI : EPILOGUE.

VI
भारतमाता

स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में गरमपंथी राष्ट्रवादी दलों को एक वाणी श्रीरामकृष्ण की सुनाई देती थी : 'मन्दिर गढ़ो, माँ का मन्दिर गढ़ो'। लोगों ने उसे बाहर गढ़ने की कोशिश की- भारतमाता का मंदिर भारत के बीचो-बीच और विंध्याचल की पहाड़ियों पर उसके लिये ज़मीन तलाशने लगे। किन्तु वह मंदिर गढ़ा नहीं जा सका, क्योंकि परमहंस देव का आदेश मंदिर को बाहर गढ़ने के लिए था भी नहीं; भीतर, प्रत्येक भारतवासी के हृदय में गढ़ने के लिये आदेश था। उन्होंने स्वयं अपने हृदय में भवानी का मंदिर गढ़ा था, और नरेन्द्रनाथ के हृदय को छूकर वह ब्रह्मभाव जगा दिया, जिससे वे स्वामी विवेकानन्द बन गये। आज जब देश में धर्म और भारतमाता के नाम पर तरह-तरह की संकीर्णतायें अपने राजनीतिक अंहकार के कारण भारतीय अस्मिता और सनातन आर्य आदर्श को ध्वस्त करती जा रही हैं, तब देश भर में उस विवेक और विवेक से प्राप्त आनन्द की जरूरत है जो स्वामी विवेकानन्द में प्रादुर्भूत हुआ था। 1893 वर्ष शिकागो में उनके जगप्रसिद्ध भाषण का वर्ष है। यह वह भाषण है जो उस भवानी संप्राप्ति के बाद विश्वमंच पर दिया गया था जिसे उन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करके कन्याकुमारी की शिला पर देश-मातृका का साक्षात्कार करने के बाद दिया। उस अक्षत कन्या भवानी भारती का अपना एक निजस्वरूप है जो आध्यात्मिक शक्ति का स्रोत है और जो अपनी संतान (प्रजा) में अपना रूप पाती है। अध्यात्म ब्रह्म-प्राप्ति की दृढ़शिला पर आधारित होता है, धर्म-संप्रदाय की संकीर्ण कच्ची भूमि पर नहीं। संप्रदाय तमस से आच्छन्न और रजस से लपलपा सकते हैं पर ब्रह्मतेज स्वामी विवेकानन्द में मूर्त होकर नये भारत की भास्वर सूर्यदीप्ति फैलाता है। सूर्यतेज को धारण करने वाले आधुनिक रघुवंशी विवेकानंद की ओर दृष्टि घुमाने का समय आ गया है। 1993 विश्वधर्म सभा में हिन्दू धर्म की सनातनता का निर्भय आख्यान प्रस्तुत करने का वर्ष है। उसके मूल में है सर्वव्यापी ब्रह्म की अनुभूति भूतमात्र में, वह पूर्ण शून्य o जो विश्वब्रह्मांड को घेरे हुये है और सबको अपने में समाहित किये हुये है। वह शून्य असीम बन ही नहीं सकता यदि

वह सबके केन्द्र में अपना तपस्तेज गर्भित बिन्दु न स्थापित करे। यह केन्द्रस्थ बिंदु सारे धर्मों के गर्भ में है, सबमें गोपित है, इसीलिए स्वामी रामकृष्णदेव ईसाइयत और इस्लाम की साधना करके ब्रह्मानुभूति तक पहुँच सके। क्या यह वही उदार सनातन धर्म नहीं है, जिसको विवेकानन्द ने शिकागो में गरज के साथ विश्वहृदय में प्रतिष्ठित किया था ? क्या नया भारत गढ़ने के लिए उन्होंने इसीका आख्यान नहीं किया था? हिन्दुत्व का ढोंग रचनेवालों के लिए उन्होंने देश की सामाजिक चेतना पर कुठाराघात किया "पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं, जो हिंदू धर्म के समान इतने उच्च स्वर से मानवता के गौरव का उपदेश करता हो, और पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिन्दू धर्म के समान गरीबों और नीच जातिवालों का गला ऐसी क्रूरता से घोंटता हो। ....क्या हम मनुष्य हैं ? (नया भारत गढ़ो, द्वितीय संस्करण, नागपुर, पृ० 15) इसी संदर्भ में उन्होंने कहा "पुरोहित प्रपंच ही भारत की अधोगति का मूल कारण है। मनुष्य अपने भाई को पतित बनाकर क्या स्वयं पतित होने से बच सकता है?..... क्या कोई व्यक्ति स्वयं को किसी प्रकार अनिष्ट किये बिना दूसरों को हानि पहुँचा सकता है? ब्राह्मण और क्षत्रियों के ये ही अत्याचार चक्रवृद्धि ब्याज के सहित अब स्वयं के सिर पर पतित हुए हैं; एवं यह हजारों वर्ष की पराधीनता और अवनति निश्चय ही उन्हीं के कर्मों के अनिवार्य फल का भोग है।" (वही पृ० 17)

इससे स्पष्टवाणी में हिन्दुत्व के बारे में और कुछ नहीं कहा जा सकता । आज जब हम हिन्दू राष्ट्र की दुहाई देते नहीं थकते, मुसलमानों की साम्प्रदायिकता और संकीर्णता की बात कहते नहीं थकते, अपने सारे कृत्यों को उनके संकीर्ण आदर्शों में की गई प्रतिक्रिया कहकर न्यायोचित ठहराते हैं, तब हमें एक बार फिर से आत्मालोचन करने की ज़रूरत आ पड़ी है । देश-भर से इकट्ठे साधुसंतों की जमात, हिन्दुत्व के नाम पर नारेबाजी करनेवाले दस्ते और राष्ट्र के नाम पर हिन्दुत्व की शपथ खाने वाले राजनेताओं को क्या इतना भी नहीं मालूम कि इस देश के गरीबों में इतने मुसलमान क्यों हैं? स्वामी विवेकानन्द ने चिल्लाकर कहा, "भारत के गरीबों में इतने मुसलमान क्यों हैं? यह सब मिथ्या बकवाद है कि तलवार की धार पर उन्होंने धर्म बदला। ..... ज़मीदारों और .... पुरोहितों से अपना पिंड छुड़ाने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया और फलतः आप देखेंगे कि बंगाल में जहां ज़मींदार अधिक हैं, वहाँ हिन्दुओं से अधिक मुसलमान किसान है।" (नया भारत गढ़ो, पृ० 7) यह बात बंगाल के किसानों के संदर्भ में ही नहीं, भारत के काश्तकारों और शिल्पियों के संदर्भ मे भी सच है, उनमें मुसलमान ही अधिक हैं। ये वेही हिंदू हैं जिन्होंने पुरोहितों से

अपना पिंड छुड़ाया होगा ऐतिहासिक निर्णय में। विवेकानन्द ने अपने राष्ट्र में संगठित होकर कार्यसंपादन करने की शक्ति का एकदम अभाव देखा और उसे ही सब अनर्थों का मूल कहा। हम जब संगठन बनाने ही चले तो हिन्दू का संगठन और मुसलमान का संगठन बनाते रहे। धर्म-निरपेक्षता का जो कमज़ोर और असंगठित रूप वीभत्स होकर हमारे सामने अपनी दयनीय खीस निपोरे क्षमायाचना सी कर रहा है उसके मूल में यही संगठनहीनता है। क्या हिन्दू और मुसलमानों ने मिलकर भारतीय होने के नाते धर्मनिरपेक्ष या सर्वधर्म समभावी कोई संगठन उतनी ही निष्ठा से तैयार किया जितनी निष्ठा से मस्जिद हटाने या न हटाने वाले जिद्दी दस्तों ने तैयार किया? क्या सवाल मंदिर-मस्जिद का है या भारतीय होने का है? भारतीय मुसलमान भी इसी एकत्र संगठन को तैयार न कर पाने का उतना ही दोषी है जितना कि भारतीय हिन्दू। राष्ट्र संघ या इस्लामी राष्ट्र मंच पर भारतीय मसलों को जिस संघबद्ध तरीके से उठाया जाता है, उसके प्रतिकार के लिए क्या कोई एक मंच हमारे देश में है, जिसमें केवल उदार हिन्दू ही नहीं उदार मुसलमान भी शामिल होकर उतनी ही तेज आवाज बुलंद करें जितने साम्प्रदायिकतावादी मुसलमान करते हैं? हमने आम भारतवासी की आवाज़ उठाने का कोई संगठन तैयार नहीं किया, केवल शांति और सद्भावना यात्रायें करके उसके पीड़ित, क्षोभित और खण्डित व्यक्तित्व को ढ़ाढस नहीं बंधाया जा सकता। हमें भारत में एक निपीड़ित जाति नहीं रचना है–हिन्दू धर्म की दृष्टि से अपने को पीड़ित समझता है, मुसलमान अपने को। दोनों को इस पीड़ित भाव से मुक्ति दिलाने के लिए एक अभयराज्य की कल्पना नहीं उसका संगठन चाहिए। इसी संगठन की भारतमाता को आज सख्त ज़रूरत है। धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र कहने से कुछ नहीं हुआ और हिन्दू राष्ट्र कहने से भी कुछ नहीं होगा। हमें स्वामी विवेकानंद की तरह इन दोनों से यह पूछने का अधिकार है "क्या तुम जनता की उन्नति कर सकते हो? क्या उनका खोया हुआ व्यक्तित्व, बिना उनकी स्वाभाविक आध्यात्मिक वृत्ति नष्ट किये हुये, उन्हें वापस दिला सकते हो?" (वही, पृ० 22-23) ज़ाहिर है कि यह काम वे नहीं कर सकते। क्योंकि इसे करने का दायित्व राजनीतिज्ञों या धार्मिक संप्रदायों पर नहीं, भारत के मनीषियों पर विशेषकर कर्मठ मनीषियों, कर्मठ वेदान्तियों पर है, शंकराचार्यों पर नहीं। इसी लिए विवेकानंद ने कहा : "यह काम करना है और हम इसे करेंगे ही।" (वही, पृ० 23) आध्यात्मिक तेज को, ब्रह्मवर्चस् को कोई रोक नहीं सकता। उसके तेज से हज़ार क्षत्रिय पैदा होते हैं, जिन्हें देश का या विदेश का वणिक वर्ग खरीद नहीं सकता, धर्म के नाम पर जिसे पुरोहित वर्ग, महन्त वर्ग छल नहीं सकता। वे ऐसे ही

विवेकानन्दों का जत्था होगा, अरविंदों की उग्रता होगी, जो किसी के शिंकंजे में नहीं आती–न वाग्विलास के, न धनविलास के। वे ही सत्ययुग लाने के लिये कृतसंकल्प हों, संगठित हों, तो नया राष्ट्र जन्म लेगा, असली स्वराज्य प्राणवन्त होगा, अन्यथा सारा राष्ट्र साम्प्रदायिकतावादी पुरोहितों के हाथों बंधक बना कराहता रहेगा, निस्तेज होता रहेगा। हमें आध्यात्म चाहिए, धर्म नहीं। हमें अखंडता चाहिए आध्यात्म की, संप्रदायगत खंडता नहीं। हमें झूठयुग को दफ़नाकर सत्ययुग की तैयारी करनी होगी। इसी में विवेकानन्द ने भारत का भविष्य देखा था। उन्होंने कहा : "उनके (श्री रामकृष्णदेव के) जन्म की तिथि से सत्ययुग का आरंभ हुआ है। इसलिए अब सब प्रकार के भेदों का अंत है और सब लोग चांडाल सहित उस दैवी प्रेम के भागी होंगे। .....वे शांति के दूत थे–हिन्दू और मुसलमानों का भेद, हिन्दू और ईसाइयों का भेद–सब भूतकालीन हो गये हैं। मान प्रतिष्ठा के लिए जो झगड़े होते थे,वे सब अब दूसरे युग से संबंधित हैं। इस सत्ययुग में श्री रामकृष्ण के प्रेम की विशाल लहर ने सबको एक कर दिया है। .....सत्ययुग का यह विचार ही भारत को पुनः जीवन प्रदान करेगा। विश्वास रखो। .....बच्चों उठो काम में लग जाओ। .....चिरकाल तक सनातन धर्म का डंका बजेगा। उठो, उठो मेरे बच्चों। हमारी विजय निश्चित है।" (वही पृ० 57-58)

किसी भी धार्मिक उन्माद में भारत का गरीब ही स्वाहा होता है। ये ही भारत के भविष्य के भी पहरेदार हैं। इसलिए,अकूत धन के बदौलत सांप्रदायिक ताकतों से बर्गलाये जाने की जगह, ज़रूरत है इन गरीब अशिक्षित देशवासियों को जगाने की। उनके भीतर सामाजिक सद्भाव और धार्मिक सहिष्णुता अपने आप निहित है। ज़रूरत है उनके व्यक्तित्व के भक्तिभाव में इसे प्रतिष्ठित करने की, भारत का यह सर्वहारा ही अखण्ड भारत की प्रतिष्ठा करेगा, बुद्धिजीवी या राजनेता नहीं। बुद्धि पर जीने वाले लोग अध्यात्म और भक्ति की शक्ति से बेवाकिफ़ हैं और राजसत्ता पर जीनेवाले लोग उसका उपयोग या दुरुपयोग करते हैं। जो भारत की आत्मा को पहचानता है, वह विवेकानन्द की तरह पुकार-पुकार कर कहेगा : "एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़ कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुआ, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकानों से, भुजवा के भाड़ केपास से, कारखाने से, हाट से, बाज़ार से। निकले झाड़ियों, जंगलों, पहाड़ों, पर्वतों से। .....अतीत के कंकाल-समूह। .....यही है तुम्हारे सामने तुम्हारा उत्तराधिकारी भावी भारत। वे तुम्हारी रत्नपेटिकाएँ. तुम्हारी मणि की अँगूठियाँ-फेंक

दो इनके बीच, जितना शीघ्र फेंक सको, फेंक दो, औरतुम हवा में विलीन हो जाओ, सिर्फ कान खड़े रखो। तुम ज्योंही विलीन होंगें, उसी वक्त सुनोगे, कोटि जीमूत स्यंदिनी त्रैलोक्य-कंपनकारिनी भावी भारत की उद्‌बोधध्वनि ''वाहे गुरू की फतह'' .....उसे जगाओ और पहले की अपेक्षा और भी गौरव मंडित और अभिनव शक्तिशाली बनाकर भक्तिभाव से उसे उसके चिरंतन सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दो।' (वही, पृ० 58)

यही वह प्रजातंत्र है जिसकी हम कामना करते हैं। इस प्रजा के प्रजापति बनने के जितने ढोंग हम कर चुके हैं, उतने काफी हैं। इन्हीं में नारायण सोया हुआ है, इसका अनुभव श्री अरविंद को अलीपुर जेल में एक वर्ष के कारावास में हुआ था। उसी को जगाने के लिए उन्हें शक्ति दी गई थी। और भारत में इसी नारायण वासुदेव के साक्षात् दर्शन का भगवद्‌नुग्रह उन्हें मिला था। इसी अनुग्रह से अनुग्रहीत करने के लिए वासुदेव ने उनसे उत्तरपाड़ा में धर्मरक्षिणी सभा में बुलवाया था, श्री अरविंद के मुख से वह सब कुछ छीन लिया था जो वे कहना चाहते थे, और वही कहलाया जो देश के उत्थान के लिए, सनातन धर्म की रक्षा के लिए अत्यावश्यक है। यदि वासुदेव के इस विराट सनातन भाव की हम रक्षा नहीं कर सकते तो हम हिन्दू धर्म की भी रक्षा नहीं कर सकते, भारत की भी नहीं। तीनों एक साथ बँधे हैं–त्रिभुज में त्रिकोण की तरह, तीनों एक दूसरे को थामे हुये हैं त्रिभुज की तीन रेखाओं की तरह। विश्वात्मा ही नीचे की समतलीय रेखा है, वासुदेव का प्रसार है–उसी के दोनों हाथों से भारत की ऊर्ध्वकोंण रेखा और सनातन धर्म का ऊर्ध्वकोंण अभ्युदय संभव है। जिस शीर्ष बिन्दु पर भारत और सनातन धर्म मिलते हैं वहीं पर भवानी भारती के चरणों का दर्शन होगा। उसके पहले भारत माता के बारे में कल्पनायें करके कुछ भी सिद्ध नहीं किया जा सकेगा। इसी भारत माता का साक्षात्कार विवेकानंद ने इस त्रिकोण को उलटकर कन्याकुमारी की शिला पर किया था–ऊर्ध्व में था वासुदेव और उससे संजात था नीचे उतरता हुआ विशाल भारत का चरणतल जिसे त्रिसमुद्र धो रहे थे। भारतीय पुनर्जागरण के कविगण ने भारती शक्ति के इसी रूप की वंदना की थी।

इसी भारत भवानी, विराट भारत शक्ति की प्रतिष्ठा के लिए 'भवानी मंदिर' की कल्पना क्रान्तिकारियों ने की थी। उत्तरपाड़ा भाषण में जिस हिन्दू धर्म की सनातन धर्म के रूप में प्रतिष्ठा हुई है वह किसी देवता या देवी को लेकर विकसित नहीं हुआ, यह वासुदेव द्वारा उपदिष्ट वह धर्म था, जिसे उन्होंने अर्जुन को राष्ट्रनाश की

घड़ी में दिया था। वही वासुदेव फिर बोल रहा था : "इसी धर्म को मैं संसार के सामने उठा रहा हूँ, यही वह धर्म है जिसे मैंने ऋषि-मुनियों और अवतारों के द्वारा विकसित किया और पूर्ण बनाया है और अब यह धर्म अन्य जातियों में मेरा काम करने के लिए बढ़ रहा है। मैं अपनी वाणी का प्रसार करने के लिए इस जाति को उठा रहा हूँ। यही वह सनातन धर्म है, जिसे तुम पहले सचमुच नहीं जानते थे.....। .....वे अपने लिए नहीं बल्कि संसार के लिए उठ रहे हैं। मैं उन्हें संसार की सेवा के लिए स्वतंत्रता दे रहा हूँ। अतएव जब यह कहा जाता है कि भारतवर्ष ऊपर उठेगा, तो इसका अर्थ होता है सनातन धर्म ऊपर उठेगा। जब कहा जाता है कि भारतवर्ष महान होगा तो इसका अर्थ होता है सनातन धर्म महान होगा।" (उत्तर पाड़ा भाषण और भवानी मंदिर : श्री अरविंद, प्रका० श्री अरविंद आश्रम : 1974)

इस समय इसी सनातन धर्म की ग्लानि हुई है। सांप्रदायिकता धर्म ग्लानि का प्रमाण है, चाहे वह जिस भी संप्रदाय से उत्पन्न हो। सांप्रदायिक द्वेष, हिंसा और संकीर्णता इस्लाम या हिन्दुत्व के मूल स्रोत को ही नकार देते हैं। राष्ट्र के उत्थान के लिये न केवल हिन्दुत्व की स्वस्थ-सनातनता का उदय होना आवश्यक है, वरन इस्लाम की एकेश्वरता की स्वस्थ सनातन का अभ्युदय भी आवश्यक है। इस एकेश्वरवाद में केवल मुसलमान ही मुसलमान का भाई नहीं है, हिन्दू भी उसका सहोदर भाई है। और इस अद्वैतता में केवल हिन्दू ही हिन्दू का सहोदर भाई नहीं है, मुसलमान भी नारायण जात सहोदर है। यदि हम धर्म से निरपेक्ष न होकर धर्म की सही शक्ति को आयत्त करें तो पायेंगे कि धर्म हिंसा और अराजकता की शक्ति नहीं, एकता और प्रेम की शक्ति है। इसी भाव से भारत का उत्थान संभव है–इस सनातन भाव से कि ईश्वर एक है और वह द्वैत नहीं, अद्वैत ही है। इस वेदान्त सत्य से ही, इस इस्लामी सत्य से ही धर्म जीवित रहता है, राजशक्ति या पुरोहित की शक्ति से नहीं। और जब जनता के बीच स्वयं नारायण कार्य करने लगें तो उस अभ्युत्थान को कौन रोक सकेगा? उत्तरपाड़ा में भाषण देते हुए श्री अरविंद के मुख से नारायण बोल रहे थे : "धर्म के लिए और धर्म के द्वारा ही भारत का अस्तित्व है। धर्म की महिमा बढ़ाने का अर्थ है देश की महिमा बढ़ाना। मैने तुम्हें दिखा दिया है कि मैं सब जगह हूँ, सभी मनुष्यों और सभी वस्तुओं में हूँ, मैं इस आन्दोलन में हूँ और केवल उन्हीं के अन्दर कार्य नहीं कर रहा जो देश के लिए मेहनत कर रहे हैं बल्कि उनके अन्दर भी जो उनका विरोध करते और मार्ग में रोड़े अटकाते हैं। मैं

प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर में काम कर रहा हूँ, और मनुष्य चाहे जो कुछ सोचें या करें पर वे मेरे हेतु की सहायता करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकते।" (वही, पृ० 25)

आज राजनीति के क्षेत्र में जो नेता अपने को हिन्दू धर्म का उद्धारकर्ता समझते हैं, और हिन्दू धर्म के नाम पर सारे साधु संत जो राजनीतिक मंच पर इकट्ठे हो जाते हैं, और जो विश्व भर में हिन्दू धर्म के नाम पर अपनी परिषदें गढ़ रहे हैं, क्या उन्हें पता है कि हिन्दू धर्म क्या है? उत्तरपाड़ा भाषण देश की करोड़ों हिन्दू जनता को हिन्दू धर्म समझाने का एक माध्यम भी था। श्री अरविन्द ने उसी भाषण के अंतिम चरण में इसे स्पष्ट भी कर दिया। उन्होंने कहा : "आपकी सभा का नाम है 'धर्मरक्षिणी सभा' । अस्तु, धर्म का संरक्षण, दुनिया के सामने हिन्दू धर्म का संरक्षण और उत्थान यही कार्य हमारे सामने है। परन्तु हिन्दू धर्म क्या है? वह धर्म क्या है जिसे हम सनातन धर्म कहते हैं? वह धर्म हिन्दू धर्म इसी नाते है कि हिन्दू जाति ने इसको रखा है, क्योंकि समुद्र और हिमालय से घिरे हुए इस प्रायद्वीप के एकांतवासमें यह फलाफूला है, क्योंकि इस पवित्र और प्राचीन भूमि पर इसकी युगों तक रक्षा करने का भार आर्य जाति को सौंपा गया था। परन्तु यह धर्म किसी एक देश की सीमा से घिरा नहीं है, यह संसार के किसी सीमित भाग के साथ विशेष रूप से और सदा के लिए बंधा नहीं है। जिसे हम हिन्दू धर्म कहते हैं वह वास्तव में सनातन धर्म है, क्योंकि यही वह विश्वव्यापी धर्म है जो दूसरे सभी धर्मों का आलिंगन करता है। यदि कोई धर्म विश्वव्यापी न हो तो वह सनातन भी नहीं हो सकता। कोई संकुचित धर्म, सांप्रदायिक धर्म, अनुदार धर्म कुछ काल और किसी मर्यादित हेतु के लिए ही रह सकता है। यही एक ऐसा धर्म है जो अपने अंदर सायंस के आविष्कारों और दर्शनशास्त्र के चिंतनों का पूर्वाभास देकर और उन्हें अपने अंदर मिलाकर जड़वाद पर विजय प्राप्त कर सकता है। यही एक धर्म है जो मानव जाति के दिल में यह बात बैठा देता है कि भगवान हमारे निकट हैं, यह उन सभी साधनों को अपने अंदर ले लेता है जिनके द्वारा मनुष्य भगवान के पास पहुँच सकते हैं। यही एक ऐसा धर्म है जो प्रत्येक क्षण, सभी धर्मों के माने हुये इस सत्य पर ज़ोर देता है कि भगवान् हर आदमी और हर चीज में हैं, तथा हम उन्हीं में चलते फिरते हैं और उन्हीं में हम निवास करते हैं। .....यही एक धर्म है जो संसार को दिखा देता है कि संसार क्या है–वासुदेव की लीला" (वही, पृ० 26-27)

इसी उदात्त, सर्वधर्म प्रेमी, सनातन धर्म को लेकर हिन्दू जाति पैदा हुई। उसी का भारत के एकांत में उदारभाव से उसने संरक्षण और पोषण किया। और आंज इसी उदार और उदात्त भाव के सक्रिय जागरण का समय उपस्थित है। जब जब धर्म की इस उदारता और उदात्तता का क्षरण हुआ है, तब तब भारत की अवनति हुई और प्रतिक्रिया स्वरूप सुधारवादी उदारधर्म उठ खड़े हुये जैसे पुरोहिती के आक्रोश में बौद्ध धर्म।

बोधित्व और बोधिसत्व ही हमारी सनातन पहचान है, उसके अभाव में कोई देवालय नहीं। श्री अरविंद ने सनातन-धर्म की इस उदात्त भूमिका को दिखाते हुए कहा था : "आज मैं यह नहीं कहता कि राष्ट्रीयता एक विश्वास है, एक धर्म है, एक निष्ठा है, बल्कि मैं यह कहता हूँ कि सनातन धर्म ही हमारे लिए राष्ट्रीयता है। .....जब सनातन धर्म की हानि होती है तब इस जाति की अवनति होती है और यदि सनातन धर्म का विनाश संभव होता तो सनातन धर्म के साथ ही साथ इस जाति का विनाश हो जाता। सनातन धर्म ही है राष्ट्रीयता।"(वही, पृ० 27) श्री अरविंद के इस वक्तव्य को ग़लत तरीके से उद्धत करके हिन्दू राष्ट्र के फ़र्माबरदारों ने आम जनता को गुमराह किया है। वे यह नहीं बताते कि उनके तथाकथित हिन्दू-धर्म के उन्माद के कारण सनातन धर्म के प्रोज्वल सूर्यस्कर रूप को ग्रहण लग गया है, कि हिन्दू संप्रदाय बनाकर उन्होंने सनातन धर्म की हानि की है। और इस सनातन धर्म की हानि से भारतीय जाति की अवनति हुई है। उनकी मेधा, उनकी शक्ति, उनकी तेजस्विता सबका दुधारी तलवार की तरह इस्तेमाल हुआ है। और उन्होंने इस वाग्भट्टता से तथा इससे उत्पन्न संकीर्ण उन्माद से न केवल मुसलमानों को वासुदेव लीला के बाहर किया है, बल्कि स्वयं हिन्दू जाति को भी अवनति के रास्ते पर ढकेल दिया है। जिस ढलान पर हिन्दू धर्म के नाम पर आर्य जाति को लाकर रख दिया गया है और वह भी राष्ट्रीयता के नाम पर, वह ऐसा कगार है जहाँ से राष्ट्रीयता और हिन्दू धर्म दोनो बालू की भित्ति ही साबित होंगे। यदि सचमुच हमें राष्ट्र में सनातन धर्म प्रतिष्ठित करना है, न केवल राष्ट्र में वरन विश्व के सामने इसकी अद्भुतता और विलक्षणता साबित करनी है, तो इसे इसकी मूल शक्ति और आर्य भाव में प्रतिष्ठित करना होगा।

वह राष्ट्रीयता जो सनातन धर्म का पर्याय बन सकती है उसके लिए किसी और देवी-देवता की नहीं बल्कि स्वयं विश्वजननी भवानी की एक भारती प्रतिमा को मुमूर्ष अवस्था से जिलाना होगा। यह वही भारतमाता है जिसने स्वतंत्रता आन्दोलन

के दौरान देश के करोड़ों भारतवासियों–हिन्दू हो चाहे मुसलमान–को अपनी भुजा बनाया था। इस भारतमाता को हमने घायल कर दिया है और राष्ट्रीयता का डंका पीट रहे हैं। इसी "भवानी भारती" की प्रतिष्ठा के लिए श्री अरविंद प्रतिबद्ध थे, किसी हिन्दू देवी देवता के लिए नहीं। वासुदेव की यह लीला है कि वह इस राष्ट्र में भवानी मंदिर गढ़ रहा है। वेदों में चार देवियों के वर्णन हैं, जो हमें वेदविद् बनाती है–इला, सरस्वती, सरमा, भारती। इला सत्यदृष्टि है, सरस्वती सत्यश्रुति और सरमा सत्य के छिपे हुये रूपों की संधाता। भारती वह विराट शक्ति सामर्थ्य है, वासुदेव परायण वह नारायणी शक्ति है जिनमें सत्यदृष्टि या सत्यश्रुति पहुँचती है। भारती के बिना, विशाला के बिना सत्य ठहर ही नहीं सकता। इसी 'भवानी' भारती का मंदिर हृदय में गढ़ने के लिये श्री अरविंद ने आह्वान किया था। याद रहे कि यह मंदिर कहीं बाहर नहीं बनाया जाना था। श्री रामकृष्ण ने जिस भवानी मंदिर की आवाज सुनवाई थी, वह हृदय में गढ़े जाने के लिए कहा गया था–इसे आगे चलकर श्री अरविंद ने अपने पत्र में स्पष्ट कर दिया था। इसीलिए उनके भाई बारीन्द्र को भवानी मंदिर के लिए कहीं भूमि उपलब्ध भी नहीं हुई। वह भूमि तो संपूर्ण भारत है जहाँ भारती की प्रतिष्ठा अधूरी रह गई है। अभी हमने भवानी भारती का साक्षात्कार किया ही कहाँ कि हम राष्ट्रीयता की बात करने लगे। यह भवानी भारती शक्ति केवल आध्यात्मिक साधना से प्राप्त होती है, राजनीतिक पदेषणा, या व्यावसायिक धनकामना से नहीं। हमें उस आध्यात्मिक शक्ति को देशकर्म में नियोजित करने के लिए ब्रह्मचारी युवकों, कर्मयोगियों के एक नये संगठन की जरूरत है। श्री अरविंद ने भवानी मंदिर के बारे में समझाते हुए विस्तार से सब कुछ लिखा था। भवानी मंदिर के कर्मठ संगठन के बारे में उन्होने स्पष्ट कहा : "वे ऐसे लोग होंगे जिन्होंने माँ का काम करने के लिए अपना सब कुछ त्याग दिया हो। उनमें से कुछ अगर चाहें तो सन्यासी भी बन सकते हैं लेकिन अधिकतर ऐसे ब्रह्मचारी होंगे जो अपना सौंपा हुआ काम पूरा करके गृहस्थाश्रम में जा सकेंगे। लेकिन त्याग की भावना सबके अंदर जरूरी है। (उत्तरपाड़ा भाषण, भवानी मंदिर; श्री अरविंद आश्रम 1974) श्री अरविंद ने सनातन धर्म को जिस अर्थ में देखा वह कोई मतवाद या संकीर्ण धर्म नहीं था, बल्कि आत्मा को पहचानने और वहीं शक्ति का सच्चा स्रोत खोजने का रास्ता है। उन्होंने 'भवानी-मन्दिर' में लिखा भी कि "ब्रह्म ही आध्यात्मिक शक्ति का वह अखण्ड सागर है जिसमें से शारीरिक और मानसिक जीवन पैदा होता है। .....अगर यह ठीक है तो आध्यात्मिक शक्ति ही सब प्रकार के बल का स्रोत है, उसमें गहरे अथाह, अखूट सोते है। ऊपरी सतह के झरनों तक पहुँचना ज्यादा सरल

है, लेकिन वे जल्दी सूख जाते हैं। केवल सतह को खुरचने की जगह गहराई तक क्यों न पहुँचा जाय? परिश्रम सफल होगा।"(वही, पृ० 10-11) उन्होंने महसूस किया कि जापान की तरह भारत को भी धर्मस्रोतों से रस लेने की जरूरत है। पर यह तो पोषक रक्त बनता है, ध्वंसक मृत्यु नहीं। इसके लिये हमें नवजन्म ग्रहण करना होगा। श्री अरविन्द ने महसूस किया कि भारत को आध्यात्मिक नवजन्म की ज्यादा जरूरत है। उन्होंने इस संदर्भ में 'भवानी-मन्दिर' में कहा भी था : "हमें अपनी प्रकृति बदलनी होगी और नये हृदय के साथ नया मनुष्य बनना होगा। हमें नया जन्म लेना होगा। इसके लिए कोई वैज्ञानिक तरीका नहीं है। कोई मशीन नहीं है। शक्ति पैदा करने का एक ही तरीका है। आत्मा के अक्षय भण्डार से, भगवान की आद्याशक्ति से उसे प्राप्त किया जाय। नया जन्म लेने का मतलब है अपने अन्दर फिर से ब्रह्म की प्रतिष्ठा करना। यह आध्यात्मिक तरीका है। शरीर का कोई भी प्रयास या बुद्धि इस प्रकार का नया जन्म लेने में असमर्थ है।" (वही पृ० 9-10) इस आध्यात्मिक शक्ति से जुड़ा रहा है श्री अरविंद का देशव्यापी राष्ट्रीय आन्दोलन (Nationalist Movement)। इसी शक्ति से भारत का नवोत्थान संभव होता है। उन्होंने स्पष्ट कहा "हिन्दुस्तान में.....जब कभी पूर्ण और विशाल धार्मिक जागृति हुई है, तब राष्ट्रीय उत्थान ने भी विराट और सबल रूप लिया है। जब धार्मिक आंदोलन संकुचित या अपूर्ण हुआ है तो राष्ट्रीय गति भी अपूर्ण, अस्थायी और लड़खड़ाती हुई रही है। यह चीज हमारे इतिहास में बार-बार स्थिर रूप से दिखाई देती है और यह इस बात का प्रामण है कि यह हमारे स्वभाव का अंग है। अगर हम स्वधर्म को छोड़कर दूसरे तरीके अपनाएँ तो या तो प्रगति बहुत ही धीमी, रुक-रुक कर, कष्ट के साथ और अपूर्ण होगी या फिर होगी ही नहीं। जब हमारे सामने भगवान का दिया हुआ, माँ का दिया हुआ पक्का रास्ता है तो उसे छोड़कर किसी पगडंडी को क्यों अपनाया जाय?" (वही पृ० 10)

भारत का नया जन्म क्यों ज़रूरी है? यह आध्यात्मिक नवोन्मेष क्यों ज़रूरी है? श्री अरविन्द का कहना है कि संसार के भविष्य के लिए उसकी ज़रूरत है। वे भारत की बाहरी स्वाधीनता को तो साधनमात्र मानते थे। साध्य तो विश्वात्मा का वह उन्मेष था जिसकी ज़रुरत भारत को ही नहीं संसार को भी है। अब न पूँजीवाद न साम्यवाद वे तरीके हैं जिससे प्रगति या विकास की माप की जा सकती है बल्कि अध्यात्म का जाग्रत संचरण और उसमें उत्थित राष्ट्र की वह मान है जिसकी ओर सारी द्वन्दात्मकता सारी भौतिकता, सारी धनाढ्यता आँख लगाये बैठी है। ब्रह्मतेज

का जागरण ही सत्य का साम्राज्य प्रतिष्ठित करेगा। कलियुग के अंतिम चरण के साथ-साथ सत्ययुग के प्रारम्भिक पदक्षेप की आवाज़ सुनने के लिए हमें अपने भीतर आध्यात्म जाग्रत करना होगा। यह आध्यात्म जीवन निरपेक्ष, शून्यतावादी या मायावादी न होकर जीवन रूपांतर कारी होगा। राजनीति, समाज, धर्म, दर्शन, कला साहित्य, -संस्कृति के सारे उपादान अपने अक्षय स्रोत की ओर लौटेंगे। तभी हमारा राजनीतिक जीवन भी रूपांतरित होगा, उसके पहले नहीं। राजनीतिक जीवन की ओर श्री अरविंद नहीं लौटे इसलिये कि देश इस अध्यात्म जागरण की शक्ति को राजनीति में बर्दाश्त करने के लिये तैयार नहीं था। वह या तो धर्म के उन्माद से आध्यात्म को बर्ख़ास्त करने पर उतारू था या धर्महीनता में शरण खोजकर आध्यात्म से छुटकारा पा जाना चाहता था। प्रत्येक धर्म राजनीति में उतरें - यह उदारता भी श्री अरविन्द ने दिखाई। वह इसलिये कि इस धर्मपरायण देश में राजनीति को यदि सनातनधर्म की भूमिका से एकाकार करना है तो उसमें इस्लाम को भी हिस्सेदारी करनी होगी, सिक्ख धर्म को भी। राष्ट्र क्या है? यह समझाते हुए श्री अरविंद ने कहा " हमारी मातृभूमि क्या है? यह कोई भूमि का टुकड़ा, भाषा का अलंकार या मन की कहानी नहीं है? जैसे भवानी महिषमर्दिनी का प्रादुर्भाव करोड़ों देवताओं की शक्ति के मिलन से हुआ था उसी तरह भारत माता भी एक शक्ति है जो करोड़ों देशवासियों की शक्ति से मिलकर बनी है। जिस शक्ति को हम भारतवर्ष या भवानी भारती कहते हैं, वह भारत के तीस करोड़ (उन दिनों आबादी तीस करोड़ ही थी) की जीवित जाग्रत शक्ति है। लेकिन वह निष्क्रिय पड़ी है, तामसिक चक्र में बँधी है, अपनी सन्तान की जड़ता में ही आनन्द लेने वाली वृत्ति और अज्ञान में फँसी है। इस तमस से बचने का एक ही उपाय है अपने अंदर ब्रह्म को जगाना।" (वही पृ० 6-7)

यह काम किसी भी जाति को सौंपे गये कामों में सबसे बड़ा है। इसी विलक्षण काम को शुरू किया परमहंस श्री रामकृष्ण देव ने और इसी का प्रसार किया विवेकानन्द ने । श्री अरविन्द नेअपने सकर्मक तेज से इसे बढाया। किन्तु हमने कर्म में तेज को धारण करना छोड़ दिया, और नाना मतमतान्तरों, पार्टीकुशल राष्ट्रवाद में भटक गये। अगर राष्ट्रवादियों का आध्यात्मिक तेज हम धारण नहीं कर सके तो इसका कारण यह रहा है कि शुरू में हमने तमस् के बादलों को अपनी आत्मा पर छा जाने दिया है, संदेह, आलस्य, भय या संकोच से अपनी आत्मा को तामसिक निष्क्रियता में बंदी बना डाला और अगर आज यह तमस् छिन्नभिन्न होता हुआ

दिखाई भी पड़ रहा है तो आत्मतेज राजसिकता में भटकता हुआ साफ दिखाई दे रहा है। आत्मा की शक्ति तमस् और रजस दोनों से ऊपर उठकर सत्व में प्रतिष्ठित होती है। शुद्ध सत्व ही तेजस् को जन्म देती है। इसीलिये श्री अरविन्द ने कहा कि वे ब्रह्मतेज को लेकर पैदा हुये थे। यह ब्रह्मतेज ही क्षात्र-तेज उत्पन्न कर लेता है। इसीलिये श्री रामकृष्ण परमहंस विवेकानन्द पैदा कर सके। इसी तेजस् के विग्रह थे विवेकानन्द जो ब्रह्मतेज का धारक था। वे ही शिकागो में उस विश्वधर्म की प्रतिष्ठा कर सके जो सनातन-धर्म के नाम पर उत्तर-पाड़ा भाषण में आगे व्याख्यायित हुआ। इसीके उत्थान के लिये वासुदेव नारायण कृत संकल्प हैं। अतएव भवानी मंदिर को, भीतर हृदय में महसूस करते हुए श्री अरविन्द ने कहा था :– "भारत नष्ट नहीं हो सकता। हमारी जाति समाप्त नहीं हो सकती, क्योंकि मानव जाति के भविष्य के लिए वह बहुत आवश्यक है, उसे सबसे ऊँची और सबसे शानदार भूमिका के लिए चुना गया है। भारतवर्ष से ही सारे संसार का धर्म निकलेगा; वह शाश्वत सनातन धर्म जो सब धर्मों में, विज्ञान और दर्शन में समन्वय करेगा और मानव जाति को एक अंतरात्मा बनायेगा। इसी तरह भौतिक क्षेत्र में उसे मानवजाति की म्लेच्छता, गंवारूपन, अशिष्टता दूर करके सारे संसार को आर्य बनाना है, लेकिन इससे पहले उसे अपने आपको फिर से आर्य बनाना होगा।" (वही, पृ० 7-8)

1393 में सेक्यूलर शिक्षा प्राप्त कर जैसे ही श्री अरविन्द ने भारत की भूमि का अपोलो बंदरगाह पर स्पर्श किया, उन्हें ब्रह्मानुभूति ने अकस्मात घेर लिया। यह वह अतर्क्य प्रमाण था भारतभूमि की विशेष चेतना का जिसे किसी भी प्रकार झुठलाया नहीं जा सकता था। इसी स्वानुभव का प्रमाण लेकर उसे राजनीतिक जीवन में पुष्ट किया श्री अरविन्द ने। क्या हम 1993 वर्ष में– जो श्री अरविन्द के भारत–आगमन का शताब्दी वर्ष है और विवेकानन्द के शिकागो जाने का शताब्दी वर्ष है– यह प्रार्थना नहीं कर सकते कि हे भारतभूमि ! हमें भी वह स्पर्श दो जो सनातन हो, अक्षय हो और तुम्हारे विश्वमातृका का सार्वभौम स्वरूप हो। हम अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो सकें, अपने स्वधर्म का आचरण कर सकें– शताब्दी के इन दो महापुरुषों से हम आशीर्वाद चाहते हैं। हम भारत-भवानी से प्रार्थना करते हैं– रूपं देहि, जयं देहि, यशोदेहि, द्विषोजहि। जो शत्रु हमारे भीतर छिपे हैं, उनका नाश हो, तभी हम जयी और यशस्वी हो पायेंगे। तभी हम भारती शक्ति को पहचान सकेंगे, और 'निराला' के शब्दों में गा सकेंगे–

भारति जय, विजय करे
कनक-शस्य-कमल धरे !

लङ्का पदतल- शतदल,
गर्जितोर्मि सागर- जल
धोता शुचि चरण-युगल
स्तव कर बहु-अर्थ-भरे !

तरु-तृण-वन-लता-वसन,
अंचल में खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल- कण,
धवल- धार हार गले !

मुकुट शुभ्र हिम-तुषार,
प्राण प्रणव ओङ्कार,
ध्वनित दिशाएँ उदार,
शतमुख- शतरव- मुखरे ।

●

लेखिका की अन्य कृतियाँ

1. मध्ययुगीन हिन्दी कृष्णभक्ति-धारा और चैतन्य-संप्रदाय
2. कृष्णकाव्य में सौंदर्यबोध एवं रसानुभूति
3. भारतीय संस्कृति (Sri Aurobindo : The Foundation of Indian Culture) : संकलन और अनुवाद
4. भावी कविता : (Sri Aurobindo : The Future Poetry) अनुवाद (उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत)
5. पंतकाव्य में श्री अरविन्द की पारिभाषिक शब्दावली
6. काव्य चिन्तन : श्री अरविन्द
7. आधुनिकता से आगे : श्री नरेश मेहत

और

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित अनेक र

Library IIAS, Shimla
H 294.572 Sr 38 A
00099634